Master of Arts (Public Administration) (DDE)

Semester – I

Paper Code – 20PUB21C2

ADMINISTRATIVE THOUGHT – I

प्रशासनिक विचार – I

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr.* _____

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

M.A. (Public Administration) Sem-I
Administrative Thought-I (20PUB21C2)

Total Marks = 100 Semester End Exam = 80
Time = 3 hrs. Internal Assessment = 20

Note: The question paper will consist of **five** units. Each of the first four units will contain two questions and the students shall be asked to attempt **one** question from each unit. Unit - V of each question paper shall contain **eight** short answer type questions without any internal choice and it shall be covering the entire syllabus. As such unit - V shall be Compulsory.

Course Outcomes

CO-1. Help in knowing that how behavioural aspects of human affect the output of the organization.

CO-2. Help in knowing the different factors which can motivate the person to work efficiently.

CO-3. Help in knowing that how the management techniques can be used to increase the performance of the administration.

CO-4. Impart the knowledge of student about Policy formulation and Implementation.

UNIT-I

Kautilya, Mahatma Gandhi, Jawaharlal Nehru

UNIT-II

Sardar Vallabhbhai Patel, Swami Vivekanand, Paul H. Appleby

UNIT-III

Woodrow Wilson, Hanry Fayol, F.W.Taylor

UNIT-IV

Luther Gullick, Max Weber, M.P.Follet

Suggested Readings:

1. Nisha Ali, S.S. , Eminent Administrative Thinkers, Delhi, Associated Publishing House, 1998
2. Maheshwari ,S.R. , Administrative Thinkers, New Delhi: Macmillan, India Ltd., 1998
3. Prasad, Ravindra; V.S. Prasad and Satyanarayan (ed.), Administrative Thinkers, New Delhi, Sterling, 2010.(Hindi & English)
4. Sudha G.S., History of Management Thought, Jaipur, RBSA, 2003, Fourth Edition, (Hindi Medium) reprint in 2010.
5. Kumar, Umesh and Sanjay Kumar Singh, Prachin Avm Adhunik Parshaskiya Vicharak, New Delhi, National Book, 1980.
6. Sarkar Monoranjan , Administrative Thinkers, Delhi: Wisdom Press, 2013.
7. Sapru, R.K. , Administrative Theories and Management Thought, New Delhi: PHI Learning, 2009 (2nd Edition).
8. Theory, Narender Kumar, Theory, Eminent Administrative Thinkers, Jaipur: RBSA Publishers, 2002 (Hindi Medium)
9. Goel, S.L., Administrative and Management Thinkers, New Delhi: Deep and Deep, 2008.
10. Polinaidu, S., Public Administration, New Delhi: Galgotia, 2010 (Reprint of 2004 Edition)

विषय सूची

इकाई 1 :– Kautilya, Mahatma Gandhi, Jawaharlal Nehru

1. कौटिल्य 1–8

- सप्तांग सिद्धान्त
- वित्त विभाग
- न्याय प्रशासन तथा कानून–व्यवस्था
- भ्रष्टाचार के तरीके
- मूल्याकंन

2. महात्मा गांधी 9–14

- चम्पारन प्रयोग
- राजनीति का संरचनात्मक शस्त्र
- कांग्रेस में वास्तुशिल्पी
- नेतृत्व की प्रकृति
- गांधी जी की मंत्रियों को सलाह

3. जवाहरलाल नेहरू 15–17

- स्वतंत्रता से पूर्व नेहरू के विचार
- स्वतंत्रता के बाद नेहरू के विचार
- विभिन्न संस्थाओ का निर्माण
- निष्कर्ष

अभ्यास हेतु प्रश्न 18

इकाई 2 :– Sardar Vallabhbhai Patel, Swami Vivekanand, Paul H. Appleby

4. सरदार वल्लभभाई पटेल 19–26

- नवीन व्यवस्था में अखिल भारतीय सेवायें
- प्रान्तीय प्रधानमंत्री सम्मेलन
- प्रान्तों का दृष्टिकोण
- अन्तिम निर्णय
- स्वतंत्र भारत में सिविल सेवायें

5. स्वामी विवेकानन्द 27–31

- परिचय
- यात्राएं
- नेतृत्व तथा संगठन निर्माण
- आधुनिक प्रबन्धन तथा स्वामी विवेकानन्द
- स्वामी विवेकानन्द और वैश्वीकरण

6. पाल एच0 एपल्बी 32–38

- महत्वपूर्ण प्रकाषन
- विशेषज्ञ और सामान्य पर विचार
- भारत मे लोक प्रषासन
- औधोगिक और व्यवसायिक उद्यम, 1956
- निष्कर्ष

अभ्यास हेतु प्रश्न 39

इकाई 3 :– Woodrow Wilson, Hanry Fayol, F.W.Taylor

7. वुडरो विल्सन 40–45

- राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव
- प्रशासन और जनमत
- लोक सेवा
- प्रशासन के अध्ययन की विधियां
- आलोचनात्मक मूल्यांकन

8. हेनरी फेयोल 46–53

- प्रशासन की सार्वभौमिकता
- औद्योगिक क्रियाएँ तथा प्रशासनिक क्रियाएँ
- प्रशासन के चौदह सिद्धान्त
- प्रबन्धक के गुण
- मूल्यांकन

9. फ्रेडरिक विन्सलो टेलर 54–60

- साइन्टीफिक मैनेजमेन्ट
- अपवाद द्वारा प्रबन्ध सिद्धान्त
- टेलर के प्रयोग
- प्रकार्यात्मक–फौरमैनशिप
- टेलर और फैयोलः तुलना

अभ्यास हेतु प्रश्न 61

इकाई 4 :– Luther Gullick, Max Weber, M.P.Follet

10. लूथर एच. गुलिक 62–68

- संगठन के सिद्धान्त
- पोस्डकॉर्ब विचार
- विभागीयकरण के आधार
- मुख्यालय–क्षेत्रीय कार्यालय सम्बन्ध
- लोक–प्रशासन पर गुलिक के विचार

11. मैक्स वेबर 69–77

- सत्ता, संगठन और वैधता
- नौकरशाही प्रतिमान
- वेबर के आलोचक
- निष्कर्ष

12: मेरी पार्कर फौलेट 78–84

- रचनात्मक संघर्ष
- एकीकरण मे बाधाएँ
- समन्वय
- शक्ति एवं सत्ता
- अन्य विचारें

अभ्यास हेतू प्रश्न 85

अध्याय – 1

कौटिल्य

(KAUTILYA)

''कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्लूटो के रिपब्लिक'' के सन्दर्भ में राजनीतिक–दर्शन का कोई कार्य नहीं है, और न ही यह मन्त्रियों और अधिकारियों के मार्गदर्शन की कोई नियमावली है। इससे ज्यादा यह राजाओं को अपने साम्राज्य पर शासन करने का श्रेष्ठ तरीका तथा अपनी शक्ति को बनाने का व्यावहारिक परामर्श प्रदान करता है। –ए.एल. बाशम

भारतीय प्रशासनिक इतिहास में कौटिल्य को एक महान् चिन्तक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय प्रशासन के साथ कौटिल्य का नाम पर्यायवाची के रूप में जुड़ा है। कौटिल्य ने ही ''अर्थशास्त्र'' की रचना की जो प्राचीन भारतीय राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था की एकमात्र वैज्ञानिक और व्यवस्थित व्याख्या करने वाली पुस्तक है। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने राजशास्त्र की कला का विस्तार से उल्लेख किया है और आज से लगभग 2300 वर्ष पूर्व के विचार आज भी काफी हद तक प्रासंगिकता रखते हैं। यही कारण है कि कौटिल्य का ''अर्थशास्त्र'' लोक प्रशासन के विद्यार्थीयों के लिए पर्याप्त रूप से रुचिकर सामग्री से परिपूर्ण है।

कौटिल्य कौन थे, उनका जन्म कहाँ हुआ था? अर्थशास्त्र की रचना कब की गई? आदि–आदि प्रश्नों पर विद्वानों में मतैक्य का अभाव पाया जाता है। कौटिल्य जाति से ब्राह्मण थे और उनका जन्म तीसरी से चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के आस–पास माना जाता है। उनके जन्म स्थान को कुछ विद्वान् तक्षशिला मानते हैं, तो कुछ मगध । पर इतना अवश्य है कि कौटिल्य की शिक्षा–दीक्षा नालन्दा विश्वविद्यालय में हुई। छठी शताब्दी ईसा पूर्व से तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक भारत में 16 महा–जनपदों का उदय हो चुका था, जिनकी विस्तृत विवेचना बौद्ध ग्रन्थ 'अंगुतरनिकाय' में की गई है। इन महा–जनपदों में एक था मगध, जो शायद उस समय का सबसे शक्तिशाली महाजनपद था। मगध महाजनपद पर चौथी शताब्दी ईसा पूर्व तक नन्द वंश का शासन था और नन्द वंश का अन्तिम शासक मद्यापद्यनन्द था। एक बार उसने कौटिल्य का भरे दरबार में अपमान किया था, इस पर कौटिल्य ने नन्द वंश के नाश की प्रतिज्ञा की। कौटिल्य ने तब कूटनीति (Diplomacy) का सहारा लिया और मद्यापद्यनन्द की हत्या करवा कर नन्द वंश का नाश किया तथा चन्द्रगुप्त मौर्य को मगध की राजगद्दी पर बिठाया।

कौटिल्य की मदद से चन्द्रगुप्त मौर्य ने मगध पर शासन किया। कौटिल्य की मृत्यु कब और कहाँ हुई, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है। कौटिल्य अथवा चाणक्य, जिन्हें भारत का मैकियावली भी कहा जाता है, की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना अर्थशास्त्र है जो सम्भवतः तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व की मानी जा सकती है। 'अर्थशास्त्र' की हस्तलिखित पाण्डुलिपि 1904 में डॉ. आर. शामशास्त्री को प्राप्त हुई, जो मैसूर के थे। डॉ. शामशास्त्री ने इसका 1909 में प्रकाशन करवाया और 1915 में इसका अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित कराया गया। इसके पश्चात् 'अर्थशास्त्र' की मूल–पाण्डुलिपि की और खोज की गई तथा इसे अन्य प्रकाशकों ने प्रकाशित करवाया। पर इन सब में आर.पी. कांगले का 'अर्थशास्त्र' पर तीन जिल्दों वाला कार्य सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इसका प्रकाशन मुम्बई विश्वविद्यालय द्वारा करवाया गया।

'अर्थशास्त्र' में 15 अधिकरण, 150 अध्याय और 6000 श्लोक हैं। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' आज के समय के अध्ययन–अनुशासन अर्थशास्त्र (Economics) से भिन्न है। कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' राजशासन–कला (Statecraft) पर लिखा गया ग्रन्थ है। कौटिल्य स्वयं लिखते हैं

मनुष्य की जीविका तथा वह भूमि जिस पर वे निर्भर हैं, दोनों ही 'अर्थ' हैं। अतः वह शास्त्र 'अर्थशास्त्र' है, जिसमें मनुष्य के रहने वाली भूमि के लाभ तथा उसका अनुपात करने के उपायों का वर्णन किया गया है।

अर्थशास्त्र के सभी 15 अधिकरणों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से लोक–प्रशासन से नहीं है। इनमें अधिकरण संख्या 1, 2, 5, तथा 6 का सम्बन्ध ही लोक–प्रशासन से है। 'अर्थशास्त्र' के आधे भाग में तो विदेशी सम्बन्ध और सुरक्षा मामलों की चर्चा की गई है।

'अर्थशास्त्र के समस्त 15 अधिकरणों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है

	अधिकरण	**किससे सम्बन्धित है**
1.	पहला	राज्य तथा राजा से सम्बन्धित है।
2.	दूसरा	प्रशासन के विभाग
3.	तीसरा	न्याय प्रणाली (कानून एवं व्यवस्था)
4.	चौथा	न्याय प्रणाली(दण्ड व्यवस्था)
5.	पाँचवाँ	शासकीय कर्मचारियों के कर्तव्य
6.	छठा	राज्य के सात अंगो की विवेचना
7.	सातवाँ	षड्गुणों की विवेचना है। (विदेश नीति)
8.	आठवाँ	राज्य द्वारा युद्ध : विजय, पराजय
9.	नवाँ	सेना, राज्य पर विपत्तियाँ
10.	दसवाँ	युद्ध नीति
11.	ग्यारहवाँ	युद्ध सम्बन्धी व्यवहार
12.	बारहवाँ	राज्य की सुरक्षा
13.	तेरहवाँ	राज्य की सुरक्षा (शत्रुओं पर विजय)
14.	चौदहवाँ	राज्य की सुरक्षा (गुप्त व्यवस्थाएं)
15.	पन्द्रहवाँ	सामान्य विवेचना।

निःसन्देह 'अर्थशास्त्र' लोक–प्रशासन पर भारत का महान् शास्त्रीय ग्रन्थ है, जिसमें अधिकारियों के पदसोपान, नौकरशाही के लाभों और विफलताओं, जिसमें भ्रष्टाचार भी शामिल है, साम्राज्य के भौगोलिक विभागों, क्षेत्रीय प्रशासन, भूमि–राजस्व तथा करारोपण का उल्लेख है। अर्थशास्त्र का अध्ययन दो तरीकों से किया जा सकता है। पहला, इसे एक ऐसा कार्य (Work) माना जाएँ जो उस समय के भारत के समाज और राज्य पर प्रकाश डालता है। दूसरे दृष्टिकोण से इसे एक ऐसी पुस्तक माना जाएँ जिसमें राज्य और सरकार का वर्णन है और इस प्रकार यह सार्वभौमिक वैद्यता रखता है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में लोक–प्रशासन से सम्बन्धित विचारों को इस अध्याय में विभिन्न परिच्छेदों पर प्रकट किया जा रहा है।

कौटिल्य ने राज्य की उत्पत्ति पर बहुत विस्तार से नहीं लिखा, पर ऐसा माना जाता है कि वे हॉब्स के समान राज्य की उत्पत्ति के 'समझौतावादी' सिद्धान्त का समर्थन करते थे। राज्य की समाज में अहम् भूमिका होती है और कौटिल्य ने राज्य के लोक–कल्याणकारी स्वरूप की विवेचना की है। कौटिल्य ने एक केन्द्रीकृत राज्य का समर्थन किया है। कौटिल्य ने राज्य के सप्तांग सिद्धान्त अर्थात् राज्य की रचना करने वाले 7 अंगों की विवेचना की है

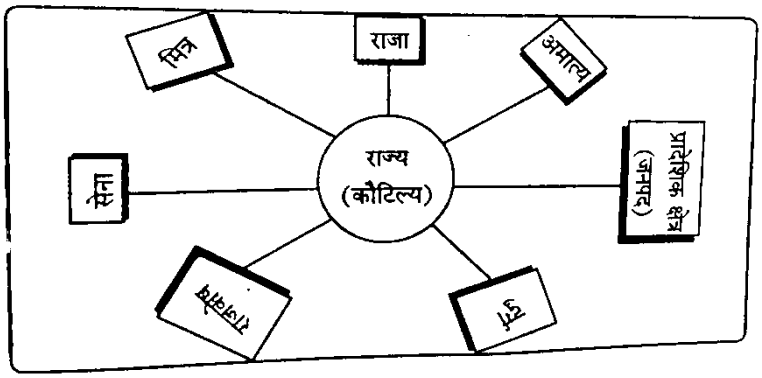

इन सातों अंगों की संक्षिप्त विवेचना इस प्रकार है।

राजा या स्वामी (King) :– कौटिल्य राजा या स्वामी को राज्य का सर्वप्रथम और शीर्षस्थ अंग मानते हैं। राजा राज्य का प्रथम नागरिक होता है और राज्य की समस्त शक्तियाँ राजा में ही निहित होती हैं। कौटिल्य राजा के लिए कतिपय गुणों की अपेक्षा करते हैं। चुंकि राजा राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी होता है अतः उसका गुणवान और चरित्रवान होना अति आवश्यक होता है। कौटिल्य का मत था कि शिक्षा द्वारा सद्‌गुणों का विकास किया जा सकता है। राजा की शक्तियाँ काफी व्यापक होती हैं, अतः उनके कुशलतापूर्वक संचालन के लिए राजा में उच्च नेतृत्व की क्षमता होनी चाहिए और साथ–साथ उसे ऊर्जावान भी होना चाहिए। कौटिल्य राजा के लिए कठोर दिनचर्या की व्यवस्था करते हैं। राजा के लिए दिन के 12 घंटों और रात के 12 घंटों को $1\frac{1}{2}$ घंटों के आठ–आठ भागों में विभाजित किया गया और प्रत्येक भाग में राजा की दिनचर्या स्पष्ट की गई। परन्तु कौटिल्य का मत था कि परिस्थितियों के अनुरूप राजा अपनी दिनचर्या में परिवर्तन भी कर सकता है।

अमात्य या मन्त्री (Amatya or Ministers):– अमात्य या मन्त्री राज्य के दूसरे महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में कौटिल्य द्वारा विवेचित किए गए हैं। कौटिल्य का मत था कि अमात्यों की नियुक्ति राजा करे और उनकी नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए। चूँकि अमात्य अति महत्त्वपूर्ण दायित्वों का निर्वहन करते हैं, अतः राज्य के लिए योग्य अमात्यों की उपयोगिता स्वतः बढ़ जाती है। राजा से कौटिल्य का सुझाव था कि उसे निर्णय लेते समय अमात्यों से सलाह–मशविरा करना चाहिए।

प्रादेशिक क्षेत्र या जनपद (Territory):– कौटिल्य के अनुसार जनपद का अर्थ राज्य की प्रादेशिक सीमाओं और उसके भीतर रहने वाले लोगों से है। व्यक्तियों से विहीन प्रादेशिक क्षेत्र और प्रादेशिक क्षेत्र विहीन व्यक्ति जनपद नहीं कहला सकते। इस प्रकार यदि हम देखें तो आधुनिक राज्य की परिभाषा के दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व, क्षेत्र और व्यक्ति कौटिल्य की जनपद की अवधारणा से मेल खाते हैं।

दुर्ग (Forts):– दुर्ग राज्य का चौथा अंग है। दुर्ग राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक समझे गए हैं। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में चार प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया है। जो दुर्ग चारों ओर से जलराशि से घिरा हो उसे औदिक दुर्ग कहा जाता है, जो दुर्ग पहाड़ों पर बना हो तथा चारों ओर से पत्थरों से घिरा हो, पर्वत दुर्ग कहलाता है, मैदान पर बना दुर्ग घान्वन दुर्ग कहलाता है और वनों से घिरा दुर्ग वन दुर्ग कहलाता है । दुर्ग राजा की जनता की सुरक्षा के लिए आवश्यक समझे गए हैं।

राजकोष या ट्रेजरी (Treasury):– राज्य के पाँचवें अंग के रूप में कौटिल्य राजकोष को पहचानते हैं। कौटिल्य राज्य के लिए राजकोष के अत्यधिक महत्त्व को स्वीकारते हैं और कहते हैं कि चूँकि सभी उद्यम धन (वित्त) पर निर्भर होते हैं अतः सर्वाधिक ध्यान राजकोष पर दिया जाना चाहिए। कौटिल्य मानते थे कि मनुष्य को धर्म से सुख प्राप्त होता है। राज्य धर्म का मूल होता है और स्वयं राज्य का मूल अर्थ अर्थात् वित्त होता है।

दण्ड या सेना (Army):– कौटिल्य प्रजा के रक्षण तथा राज्य की सुरक्षा के लिए दण्ड या सेना को राज्य का, महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं।

मित्र (Allies):– मित्र को कौटिल्य राज्य का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं क्योंकि राज्य की सुरक्षा के लिए मित्र राज्यों का होना आवश्यक है जो राज्य की संकटों के समय सहायता कर सके।

कौटिल्य का सप्तांग सिद्धान्त राज्य की आज की परिभाषा से काफी मेल खाता है। आज क्षेत्र, व्यक्ति, सरकार और सम्प्रभुता राज्य के तत्त्व माने जाते हैं, जो कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त से कुछ हद तक–मेल खाते हैं। यद्यपि कौटिल्य ने सम्प्रभुता के बारे में कुछ नहीं लिखा। कौटिल्य ने राज्य के अंगों के साथ–साथ राज्य के कार्यों का भी उल्लेख किया है। कौटिल्य के अनुसार राज्य निम्न कार्य करता हैं

1. जनता की रक्षा 2. राज्य की सुरक्षा (कानून और व्यवस्था) 3. जन–कल्याणकारी कार्य
4. सामाजिक कार्य 5. विदेशी सम्बन्धों का संचालन

इस प्रकार कौटिल्य का राज्य अहस्तक्षेपवादी राज्य न होकर लोक–कल्याणकारी राज्य है।

कौटिल्य राजा को कार्यों में सहायता देने के लिए मन्त्रिपरिषद् की व्यवस्था करते हैं। मन्त्रिपरिषद् मन्त्रियों का निकाय है। कौटिल्य के मत में राजा को मन्त्रियों की नियुक्ति करने का अधिकार है ओर उसे तीन या चार मन्त्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए। कौटिल्य योग्यता के आधार पर मन्त्रियों की नियुक्ति की वकालत करते हैं। उन्होंने योग्यता के आधार पर मन्त्रियों को तीन श्रेणियों में बाँटा– उत्तम, मध्यम तथा शुद्र। कौटिल्य राजा को मन्त्रिपरिषद् से सलाह–मशवरा करने का आग्रह करते हैं। मन्त्रिपरिषद् के मुख्य कार्यों को कौटिल्य ने इस प्रकार बताया– 1. राजा को परामर्श 2. राजा के आदेशों की क्रियान्विति पर ध्यान रखना 3. लोक–प्रशासन पर पर्यवेक्षण।

प्रधानमन्त्री और उच्च पुरोहित (राज–गुरु) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मन्त्रियों में थे। एक–दो अन्य मन्त्रियों के साथ मिलकर ये राजा की आन्तरिक कैबिनेट बनाते थे। यद्यपि कौटिल्य सभी मन्त्रियों की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियों के महत्त्व को स्वीकारते हैं फिर भी शासन व्यवस्था में प्रधानमन्त्री को प्रमुख स्थान देते हैं। कौटिल्य कहते हैं–

सभी गतिविधियाँ प्रधानमंत्री पर निर्भर करती हैं, जैसे– लोगों के कार्यों को प्राप्त करना, बाह आक्रमण तथा आन्तरिक गड़बड़ियों से साम्राज्य की सुरक्षा करना, आपदाओं के विरुद्ध उपचारात्मक उपाय, उपनिवेशीकरण, मुद्रा उन्नयन, सेना का रख–रखाव, तथा राज्य के राजस्व का संग्रहण तथा वितरण। (अधिकरण–VII, अध्याय–1)

प्रधानमंत्री के समान उच्च पुरोहित (राज–गुरु) भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मंत्री था। उसके लिए कौटिल्य ने निम्न योग्यताएँ (गुण) बताएँ हैं

वह जिसके परिवार और चरित्र की तारीफ की जाती हो, जिसने वेदों और छः अंगों की शिक्षा प्राप्त की हो, जो दैवीय या आकस्मिक शकुन–अपशकुन को समझने का कौशल रखता हो, जिसको सरकार के विज्ञान का ज्ञान हो, जो आज्ञाकारी हो, और जो आपदाओं को रोकता हो (दैवीय या मानवीय) (अर्थशास्त्र में उल्लेखित विधि–विधानों को अपनाकर वह ऐसा करता हो), ऐसे व्यक्ति को राजा राज–गुरु नियुक्त करता है। राजा उसका अनुसरण ठीक उसी प्रकार करेगा जैसे कि एक शिष्य अपने गुरु का, पुत्र अपने पिता का तथा सेवक अपने मालिक का करता है। (अधिकरण–1, अध्याय–9)

कौटिल्य ने केन्द्रीय प्रशासनिक मशीनरी में राजा, उसके विश्वसनीय परामर्शदाताओं और विभागीय प्रमुखों को शामिल किया है। कौटिल्य के अनुसार राज्य के प्रमुख पदाधिकारी निम्न थे– मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, दौवारिक, अन्तर्वेशिक, प्रशास्त्री, समाहर्ता, सन्निधाता, प्रदेष्टा, नायक, पौर, व्यावहारिक, कर्मान्तिक, मन्त्रिपरिषद्, अध्यक्ष, दण्डपाल, अन्तपाल, अटारिका आदि कौटिल्य विभागों को 'तीर्थ' कहते हैं।

उपर्युक्त पदाधिकारियों में मन्त्रियों का कार्य राजा को कार्यों में सहायता देना तथा उसे परामर्श उपलब्ध कराना है। पुरोहित राजा पर धर्म के नियन्त्रण की स्थापना करता है । सेनापति सेना का प्रमुख नायक होता है। युवराज ही राजा के बाद राज्य सम्भालता है। दौवारिक राजमहल की रक्षा का दायित्व निभाता है। राजा का प्रधान अंगरक्षक अन्तर्वेशिक होता है। समाहर्ता वित्त विभाग का मुखिया होता है। सन्निधाता का कार्य राज्य के भण्डार गृहों से सम्बन्धित है, प्रदेष्टा न्यायाधीश, व्यावहारिक भी न्यायाधीश, कर्मान्तिक कारखानों व खदानों के निरीक्षण का कार्य देखते हैं। इसके अलावा भी कौटिल्य राज्य के अनेक पदाधिकारियों के कार्यों और उनकी योग्यताओं का उल्लेख करते हैं। जैसे– दुर्गपाल, आकराध्यक्ष, कोष्ठागाराध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, आयुधाभाराध्यक्ष, शुष्काध्यक्ष, सीताध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, पत्यध्यक्ष, नागरिक, गणिकाध्यक्ष, गौध्यक्ष, स्वर्णाध्यक्ष आदि। 'अर्थशास्त्र' में कौटिल्य के विभाग में प्रशासनिक पदसोपान इस प्रकार था –

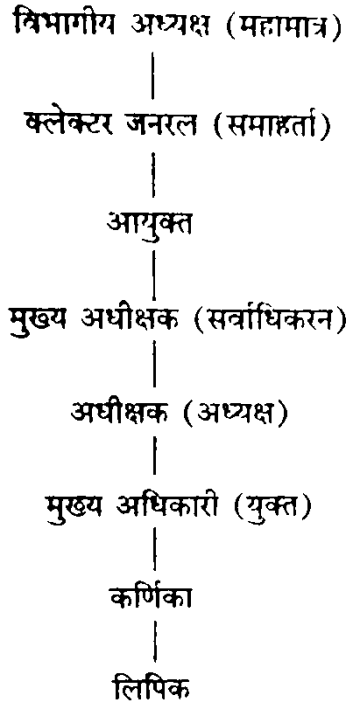

विभागों का विभाजन जनता द्वारा चाही गई सेवाओं और सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के अनुसार किया जाता था। हालाँकि इसके कतिपय अपवाद भी थे। वित्त विभाग, गृह विभाग तथा रक्षा विभाग कतिपय महत्त्वपूर्ण विभाग थे।

वित्त विभाग (Finance Department) में तीन अधिकारी थे– पहला था, कलेक्टर जनरल महा संग्रहक जो कि मंत्री स्तरीय अधिकारी था और राजस्व संग्रहण उसका मुख्य कार्य था। दूसरा अधिकारी, महा–कोषाधिकारी (Treasurer General) था। यह भी मंत्री स्तर का अधिकारी होता था में कोषागार–गृह, व्यापारगृह, अन्नागार (खाद्यान गृह), वनोत्पाद गृह, शस्त्रागार तथा कारागार (जेल) शामिल थे। वित्त विभाग का तीसरा अधिकारी लेखा–अधीक्षक (Supritendent of Accounts) था जो पारिश्रमिक की दृष्टि से मंत्री स्तर से काफी निम्न होता था। ये तीनों ही एक–दूसरे पर निर्भर होते थे। लेखा–अधीक्षक महा–संग्रहक (कलेक्टर जनरल) के अधीन होता था। लेखाओं का परीक्षण करना महा–संग्रहक का कार्य था। जिला लेखाधिकारियों का कर्तव्य था कि वे लेखा–अधीक्षक के सम्मुख बंद लेखा–पुस्तकें (Sealed Books), वस्तुएँ, और शुद्ध राजस्व की जानकारी प्रस्तुत करें। कौटिल्य का मत था कि राजा को प्राप्तियों और व्ययों के लेखाओं को व्यक्तिगत तौर पर देखना चाहिए। उसे चाहिए कि मन्त्रिपरिषद् की बैठक के दौरान वह मन्त्रियों से प्रत्येक विभाग के वास्तविक लेखाओं का विवरण सुने । व्यापारिक

गतिविधियों में संलग्न अधीक्षकों पर दोहरा नियन्त्रण होता था। इन अधीक्षकों (यथा कोषागार अधीक्षक, कारखानों के अधीक्षक, टकसाल अधीक्षक, खनन अधीक्षक, समुद्री खानों के अधीक्षक, नमक अधीक्षक, स्वर्ण अधीक्षक आदि) पर महा–संग्रहक और महा–कोषाधिकारी दोनों का नियन्त्रण होता था।

वित्त विभाग के अलावा गृह विभाग भी अति महत्त्वपूर्ण विभाग था। 'अर्थशास्त्र' के अनुसार गृह विभाग में प्रधानमंत्री, द्वारपाल, हरम–अधीक्षक आदि सभी मंत्री स्तरीय थेय ग्रामीण भागों के अधीक्षक तथा सीमाओं के अधीक्षक इस मंत्री स्तर से निम्न स्तर के अधिकारी थे तथा पासपोर्ट अधीक्षक एवं चारागाह अधीक्षक अधिकारी भी थे जिन्हें प्रतिवर्ष 1000 पण वेतन दिया जाता था। गृह विभाग का काम सम्भालने वाले मंत्री के कार्यों का 'अर्थशास्त्र' में विवरण नहीं मिलता है। द्वारपाल तथा हरेम–अधीक्षक राजा की व्यक्तिगत सुरक्षा, रक्षा तथा प्रसन्नता से जुड़े अधिकारी थे। ग्रामीण भागों और सीमाओं के अधीक्षकों का कार्य उन लोगों को पासपोर्ट जारी करना था जो देश छोड़ना चाहते थे अथवा देश में आना चाहते थे। इसी प्रकार चारागाह अधीक्षक 'पासों' (Passes) का परीक्षण करते थे, वनों की सुरक्षा करते थे, गायों की रक्षा करते थे तथा सड़कों की मरम्मत करवाते थे। 'अर्थशास्त्र' के अनुसार सड़कों की मरम्मत कराना गृह विभाग का अनिवार्य कार्य नहीं था। गुप्तचर भी गृह विभाग के अधीन आते थे। 'अर्थशास्त्र' के अनुसार सेनापति सम्भवतः रक्षा विभाग का अध्यक्ष होता था। राजदूतों का स्तर मंत्री के समान था या नहीं की स्पष्टता अर्थशास्त्र में नहीं मिलती।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन के विविध आयामों का उल्लेख भी किया है। कौटिल्य राज्य के कार्मिक को दो वर्गों में बाँटते हैं– युक्त तथा उपयुक्त।

अधीनस्थ कर्मचारी 'युक्त' कहलाते थे तथा उच्चतर प्रशासनिक अधिकारियों को 'उपयुक्त' कहा जाता था। उल्लेखनीय है कि 'अर्थशास्त्र' में निम्न कर्मचारियों के बजाय उच्चतर कार्मिक पर अधिक ध्यान दिया गया है क्योंकि उनके पास अधिक प्राधिकार तथा उत्तरदायित्व होता था। कौटिल्य कार्मिकों की भर्ती के लिए योग्यता के सिद्धान्त की वकालत करते हैं तथा सुझाव देते हैं कि नियुक्तियों की प्रणाली पक्षपातरहित होनी चाहिए। उच्च स्तर के कार्मिकों से कतिपय शारीरिक, नैतिक तथा अध्यात्मिक गुणों की अपेक्षा की जाती है। इन गुणों का मूल्यांकन विभिन्न परीक्षणों द्वारा किया जाता था। 'अर्थशास्त्र' में कार्मिकों के लिए आचार–संहिता का उल्लेख भी मिलता है। कार्मिकों से अपेक्षा की गई है वे भ्रष्टाचारी न हों, राजा के शुभचिंतक रहें तथा बिना किसी द्वेषभाव और गुटबन्दी के राज्य की सेवा करें।

'अर्थशास्त्र' में कार्मिकों को वेतन के अनुसार स्पष्ट वर्गीकरण उपलब्ध है। सर्वोच्च श्रेणी जिन्हे 48,000 पण प्रतिवर्ष वेतन दिया जाता था में प्रधानमन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज आदि शामिल थे। दूसरी श्रेणी के पदाधिकारियों को 24,000 पण वार्षिक दिया जाता था में द्वारपाल, समाहर्ता, सन्निधाता आदि। पौर, नायक, व्यावहारिक, कान्तिक आदि पदाधिकारियों को 12,000 पण प्रतिवर्ष दिया जाता था। यह तृतीय श्रेणी का वेतनमान था। चौथी श्रेणी के कार्मिकों (जैसे– सेना के विभिन्न अंगों के अध्यक्ष) को 4,000 पण प्रतिवर्ष वेतन दिया जाता था। पाँचवी श्रेणी के कार्मिकों को 2,000 पण वार्षिक वेतन मिलता था। इसी प्रकार राज्य के कुछ कार्मिकों को वेतन की छठी श्रेणी में रखा गया जिनकों 500 से 1,000 पण वार्षिक वेतन दिया जाता था।

राष्ट्रीय आय का एक बहुत बड़ा हिस्सा अधिकारियों के वेतन और सार्वजनिक कार्यों में लगता था और कुल मिलाकर इन पदों के लिए सम्पूर्ण आय का एक चौथाई भाग सुरक्षित होता था। लेखापालों और लिपिकों को 500 पण मिलते थे, और शिल्पियों को 120 पण दिए जाते थे। एक लिपिक और उच्चतम अधिकारी के वेतन में 1:96 का अनुपात बैठता है और एक शिल्पी तथा मंत्री के वेतनमान में 1:100 का अनुपात है।'' अच्छा कार्य करने वालों को पदोन्नति देकर प्रोत्साहित किया जाता था। सार्वजनिक धन का दुरुपयोग न हो सके इसलिए कर्मचारियों का स्थानान्तरण किया जाता था। कौटिल्य कर्मचारियों के 'अवकाश' का समर्थन नहीं करते। फिर भी वे आकस्मिक,

अस्वस्थता अवकाश का सुझाव देते हैं । यदि कोई कार्मिक भ्रष्टाचार या जनता के दमन का दोषी पाया जाएँ तो उसे कौटिल्य के मत में कड़ा दण्ड मिलना चाहिए। कौटिल्य ने कर्मचारियों की पेन्शन व्यवस्था का भी समर्थन किया।

कौटिल्य ने मुख्यतः दो प्रकार की स्थानीय प्रशासन की संस्थाओं का उल्लेख किया है– प्रथम, पुर अथवा नगर तथा दूसरी, ग्रामीण इकाई। पुर अथवा नगर के विभिन्नि भागों पर 'स्थानिक' का नियन्त्रण था। स्थानिक के अधीन 'गोप' थे और पुर का प्रधान अधिकारी 'नागरिक' था जो नगर में शान्ति व्यवस्था सहित अन्य प्रशासनिक कार्यों के लिए जिम्मेदार था। ग्रामीण इकाई का प्रमुख ग्रामिक होता था।

वित्त प्रशासन रूपी इंजन का ईंधन होता है। अतः कौटिल्य राजकोष पर सर्वाधिक ध्यान देने की वकालत करते हैं। कौटिल्य ने आर्थिक नीति के तीन प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख किया है जिन उद्यमों पर राज्य का अस्तित्व निर्भर करता है उनका संचालन आवश्यक रूप से राज्य द्वारा ही किया जाना चाहिए। इन मूल उद्यमों पर राज्य का ही स्वामित्व और नियन्त्रण होना चाहिए। इस प्रकार के उद्यम आज के लोक उद्यमों के समान हैं जिन पर स्वामित्व और नियन्त्रण राज्य का होता है। दूसरे सिद्धान्त के अनुसार स्थापित किए गए उद्यमों पर जनता अपनी पूँजी, श्रम तथा प्रबन्ध लगा सकती है और इस प्रकार उनके प्रबन्ध व संचालन का दायित्व उन्हीं का होता है जिनकी पूँजी उनमें विनियोजित होती है। तृतीय सिद्धान्त के अनुसार उद्यमों पर राज्य के नियन्त्रण का समर्थन किया जाता है। कौटिल्य ने राजस्व तथा व्यय प्रशासन के विभिन्न आयामों का उल्लेख भी अर्थशास्त्र में किया है।

अर्थशास्त्र में तीसरे और चौथे अधिकरण में न्याय प्रशासन तथा कानून–व्यवस्था प्रशासन के विविध आयामों की विस्तार से चर्चा की है। अर्थशास्त्र में सर्वोच्च न्यायिक अधिकारी राजा को बताया गया है तथा न्याय के स्रोत के रूप में राज्य की पहचान की गई है। कौटिल्य राजा से आग्रह करता है कि राजा को अपनी न्यायिक शक्ति का उपयोग धर्म के अनुसार करना चाहिए। कौटिल्य समुचित न्याय प्रणाली की स्थापना पर काफी जोर देते हैं क्योंकि यह राज्य का प्रमुख दायित्व है। वे संगठित और व्यवस्थित न्याय प्रणाली का समर्थन करते हैं। उन्होंने अर्थशास्त्र में दो प्रकार के न्यायालय बताएँ हैं

प्रथम प्रकार के न्यायालयों को कौटिल्य धर्मस्थीय न्यायालय कहते हैं। धर्मस्थीय न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में समस्त दीवानी मामले शामिल हैं तथा दूसरे कण्टक शोधन न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में फौजदारी मामले आते हैं। कौटिल्य कहते हैं कि न्यायाधीशों की नियुक्ति राजा द्वारा की जानी चाहिए और उनकी नियुक्ति का आधार योग्यता हो । कौटिल्य न केवल न्यायाधीशों की शक्तियों का ही उल्लेख करता है अपितु न्यायाधीशों पर समुचित नियन्त्रण प्रणाली का भी समर्थन करता है ताकि न्यायाधीशों को त्रुटियों से बचाया जा सके। नियन्त्रण के साथ–साथ कौटिल्य न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की भी वकालत करते हैं। न्याय प्रक्रिया के अभिन्न अंग के रूप में कौटिल्य दण्ड व्यवस्था का भी विस्तृत विवेचन करते हैं।

कौटिल्य ने राज्य द्वारा विदेशी सम्बन्धों के संचालन, दूत व्यवस्था, गुप्तचर व्यवस्था आदि विषयों पर भी काफी विस्तार से लिखा है। कौटिल्य ने अन्तराज्य सम्बन्धों की विवेचना करते हुए चार उपायों और षड्गुण नीति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। चार उपाय निम्न हैं–साम, दाम/दान, दण्ड तथा भेद। ...

साम से कौटिल्य का आशय सम्मान के प्रयोग से, दाम, दान से आशय धन देने से, दण्ड से आशय शत्रु को दण्डित करना तथा भेद से आशय शंका पैदा करना/धोखा देने से है। षड्गुणों में सन्धि का आशय विरोधी पक्ष से समझौता करने से है। आसन का अर्थ युद्ध की प्रतीक्षा करने से है। विग्रह से आशय दुश्मन का उपकार करना, यान से आशय वास्तविक आक्रमण करना, संश्रय से आशय शक्तिशाली विरोधी पक्ष की शरण में चले जाना तथा द्वैध भाव से आशय दोगली भावना रखना है अर्थात् सन्धि व विग्रह का साथ में इस्तेमाल करना। कौटिल्य विदेशी सम्बन्धों के संचालन व आन्तरिक स्थिति की जानकारी के लिए दूत तथा गुप्तचर व्यवस्था के महत्त्व को भी उजागर करते हैं।

प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के बारे में कौटिल्य अर्थशास्त्र में एक स्थान पर लिखते हैं कि जिस प्रकार यदि जीभ पर शहद रख दिया जाए और व्यक्ति को कहा जाए कि वह इसका स्वाद न ले, तो यह असम्भव है। इसी प्रकार राज्य के वित्तीय कार्यों को सम्पादित करने वाले कार्मिक उस वित्त का थोड़ा भी स्वाद न चखें, यह भी असम्भव है। कहने का आशय यह है कि वित्तीय कार्यों में संलग्न व्यक्ति वित्त का गबन किए बिना नहीं रह सकते। परन्तु वे हमें ऐसा करते हुए नहीं दिखते। इस बात को स्पष्ट करते हुए कौटिल्य एक उदाहरण देते हुए बताते हैं कि जिस प्रकार पानी में रहने वाली मछली हमें पानी पीते हुए नहीं दिखती है, उसी प्रकार वित्तीय कार्यों में संलग्न व्यक्ति हमें गबन करते हुए नहीं दिखते। कौटिल्य अर्थशास्त्र में भ्रष्टाचार के चालीस तरीकों या उपायों का उल्लेख करते हैं। जैसे

1. चोरी करना 2. पक्षपात करना 3. रिश्वत लेना व निर्णय देना 4. रिश्वत लेकर कोई कार्य करना 5. राजकीय धन से अधिक धन लेना 6. प्राप्त की गई राशि से कम राशि का उल्लेख करना 7. कर वंचन 8. राजकीय धन को राजकोष में जमा नहीं कराना आदि–आदि।

कौटिल्य राजकीय कर्मचारियों से पूर्ण ईमानदारी से कर्तव्यपालना का आग्रह करते हैं।

कौटिल्य के विचारों का मूल्यांकन और प्रासंगिकता (Evaluating Kautilya's Views and their Relevance):– डी. मैकन्जी ब्राउन अपनी पुस्तक, ''इण्डियन पॉलिटिकल थॉटः फ्रॉम मनु टू गाँधी'' में कौटिल्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि कौटिल्य ने पूर्ण क्षमता, के साथ एक ही कार्य अर्थात् 'अर्थशास्त्र' द्वारा वह सब कुछ स्पष्ट कर दिया जो कि अरस्तु, मैकियावली और बेकन ने अलग–अलग स्पष्ट करने का प्रयास किया था। कौटिल्य के विचार आज से 2200 वर्ष से भी अधिक पुराने हैं तथापि आज भी उनके विचारों की न्यूनाधिक प्रासंगिकता देखने को मिलती है। कौटिल्य द्वारा राज्य के जो सात अंग बताए हैं, वे काफी हद तक, सिवाय सम्प्रभुता को छोड़कर, आधुनिक राज्य के तत्वों से मेल खाते हैं। कौटिल्य का राज्य भी लोक–कल्याणकारी प्रकृति का था और आज भी राज्य का स्वरूप लोक–कल्याणकारी ही है। .

कौटिल्य ने राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था के लिए विभिन्न विभागों, जिन्हें वे तीर्थ कहते हैं, का उल्लेख किया है। आज भी राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में प्रशासनिक विभागों की व्यवस्था होती है। कार्मिक प्रशासन पर कौटिल्य ने भी पर्याप्त ध्यान दिया था और आज भी कार्मिक प्रशासन पर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में स्थानीय प्रशासन का जिक्र किया है। स्थानीय प्रशासन आज भी लोकतन्त्र की प्रशिक्षणशाला और सच्ची पद्धति का आधार माना जाता है । उस समय भी कौटिल्य राज्य के स्वामित्व और नियन्त्रण वाले लोक उद्यमों की चर्चा करते हैं और आज भी राज्य लोक उद्यमों की स्थापना करता है।

कौटिल्य ने न्याय–प्रणाली और दण्ड व्यवस्था की विस्तृत विवेचना की है तथा दो प्रकार के न्यायालयों– धर्मस्थीय और कण्टकशोधन का उल्लेख किया है जो क्रमशः दीवानी व फौजदारी मामले देखते थे। आज की न्याय प्रणाली में भी न्यायालय दीवानी और फौजदारी प्रकार के कार्यों को करते हैं।

निःसन्देह कौटिल्य (चाणक्य) ही प्रशासन (प्रबन्ध) के सबसे पहले लेखक थे जिनका कार्य इतना व्यापक था। इस प्रकार भारत, मानव सभ्यता का पालना, प्रबन्ध व प्रशासन के जन्म स्थल के रूप में भी जाना जाता है और कौटिल्य (चाणक्य) प्रबन्ध और संगठन पर लिखने वाले पहले लेखक थे।

अध्याय – 2

महात्मा गाँधी

(MAHATMA GANDHI)

मोहनदास करमचन्द गाँधी (1869–1948) एक असाधारण प्रतिभासम्पन्न संगठन–निर्माता थे। यद्यपि यह विरोधाभास है, कि मृदु–अराजकतावादी होने के नाते, वे संगठन–विरोधी मनुष्य के रूप में भी सर्वोपरि थे। ब्रिटिश साम्राज्यीय शक्ति, जो प्रमाणित इतिहास में एक उच्चतम कोटि की संगठनात्मक मशीन के रूप में विकसित हुई थी, उसके विरुद्ध एक सफल संघर्ष करने के लिए, उन्होंने चतुरता से ईंट पर ईंट रखकर ऐसी व्यवस्था का निर्माण किया जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता में चुनौतियों का सामना करने के योग्य थी। उनमें इतनी अधिक संगठनात्मक चातुर्य और अभीमुखीकरण है इसका कोई भी प्रमाण उनके प्रारम्भिक जीवन में नहीं था। वह सभी प्रकार से साधारण प्रतीत होते थे, बैरिस्टर बनने, इंग्लैण्ड गए। वकालत के पेशे में सम्मिलित होने के लिए भारत लौटे लेकिन एक कार्यवश उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा जहाँ एक पीडात्मक अनुभव ने उनकी जीवनशैली को ही पूर्णरूपेण बदल डाला। गाँधी देर से खिलने वाले पुष्प की भाँति थे। दक्षिण अफ्रीका सरकार के बहुत से कानून और नियमन, स्पष्ट रूप में, अनुचित एवं मानव गरिमा के विरुद्ध थे और इनके विरुद्ध गाँधी जी ने भारतीयों को एकजुट किया जो उनके आहवान पर इन कानूनों और नियमनों को अहिंसात्मक विधि से निरस्त कराने के आन्दोलन में सम्मिलित हुए। गाँधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलनों का कई बार आयोजन किया – इनमें 1913 का अंतिम था – और इससे उन्हें अपने संगठन निर्माण चातुर्य को धारदार बनाने में सहायता मिली।

करीब 21 वर्ष (1893–1914) दक्षिण अफ्रीका में व्यतीत करने के बाद वे अन्ततः, 1915 में भारत लौटे। भारत, तब उनके लिए एक अपरिचित देश था। इस कारण गाँधी जी के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे पहले स्थानीय विजयें प्राप्त करें और राजनीतिक दृश्य को अधिक साफ देखने की कुशलता प्राप्त करें।

चम्पारन प्रयोग

उनका यह युद्ध था बिहार के जिला चम्पारन में नील की खेती करने वालों की ओर से और समय था अप्रैल 1917। गाँधी जी, जो ब्रिटिश राज की उदारता पर दृढ़ विश्वास रखते थे, और महायुद्ध में इस साम्राज्य में सक्रिय समर्थक भी थे, वह स्थानीय उत्पीडित कृषक वर्ग को न्याय दिलाने के लिए इस (साम्राज्य) के स्थानीय प्रतिनिधियों के विरुद्ध खड़े हो गए। नील की खेती करने वालों के विरुद्ध खेतिहर किसानों की शिकायतों की जाँचपड़ताल करने के लिए वकीलों का एक दल लेकर वे बिहार में मोतिहारी गए। वे जैसे ही वहाँ पहुँचे, जिला अधिकारियों ने उन्हें वह स्थान छोड़ने को कहा जिसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया। जब उन्हें न्यायालय में प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने सीधे दोष स्वीकार कर न्यायाधीश को भौचक्का कर दिया और कहा,

मैंने इस दण्ड को किसी भी रूप में कम करने के लिए यह वक्तव्य नहीं दिया है, न ही वैध सत्ता के प्रति अनादर व्यक्त करने के लिए, बल्कि मैंने यह वक्तव्य अपने मनुष्य होने के उच्चतर नियम, अन्तरूचेतना की आवाज के कारण दिया है।

ये शब्द औपनिवेशिक शासकों के लिए अपरिचित एवं रहस्यपूर्ण थे लेकिन साधारण जनता के लिए अनुरागपूर्ण थे। जब सरकार ने आरोप वापस लिया और गाँधी जी को मुक्त कर दिया तो चारों ओर गाँधी जी के लिए आश्चर्यजनक सम्मान उत्पन्न हो गया कि एक कृषकाय व्यक्ति, केवल आत्मबल से सर्वशक्तिमान शासक के

विरुद्ध विजय प्राप्त कर सकता है। अपनी विजय से आश्वस्त होकर उन्होंने अपने कार्यों का मंच मुम्बई प्रजिडेन्सी की ओर बढ़ाया जहाँ उन्होंने 1918 में अहमदाबाद के कपड़ा मिल मालिकों और मजदूरों के पक्ष में आमरण अनशन भी किया। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि गुजराती मानव प्रेम भावना उन्हें मरने नहीं देगी और वे गलत सिद्ध नहीं हुए। इस प्रक्रिया में, गाँधी जी ने अपने संयंत्रों और तकनीकों को और अधिक परिष्कृत कर लिया। इसी प्रकार, मुम्बई के जिला खेरा (अब गुजरात) में फसल की व्यापक असफलता को ध्यान में रखकर स्थानीय किसानों की लगान माफी के लिए एक सत्याग्रह का गठन किया। अन्ततः, सरकार ने गरीबों को राहत प्रदान कर उनके साथ समझौता किया।

इसके आगे स्थानीय आन्दोलनों के अतिरिक्त गाँधी जी ने ब्रिटिश भारतीय सरकार के विरुद्ध कई अखिल भारतीय सविनय अवज्ञा एवं असहयोग आन्दोलन प्रचलित किए जिनकी विषय–व्याख्या निम्नलिखित आधार पर की गयी है –

- 6 अप्रैल 1919 – रौलेट अधिनियम के विरुद्ध प्रथम सविनय अवज्ञा आन्दोलन।
- 13 अप्रैल 1919 – गाँधी जी ने आन्दोलन निलम्बित किया।
- 1 अगस्त 1920 – गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन, खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ किया।
- 3 फरवरी 1922 – चौरा–चौरी घटना के बाद गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन निलम्बित किया।
- मार्च 1930 – गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया।
- 4 मार्च 1931 – आन्दोलन निलम्बित ।
- जनवरी 1932 – सविनय अवज्ञा आन्दोलन पुनः प्रारम्भ ।
- मई 1934 – आन्दोलन निलम्बित।
- 17 अक्टूबर 1940 – कॉंग्रेस ने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया।
- दिसम्बर 1941 – सविनय अवज्ञा आन्दोलन कार्यकर्ता रिहा किए गए।
- अगस्त 1942 – ब्रिटेन के विरुद्ध भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ ।

राजनीतिक दृश्य में, गाँधी जी के आगमन से पूर्व, कॉंग्रेस शिक्षित उच्च मध्य वर्ग के वर्चस्व वाली एक अभिजात्य वर्गीय संगठन था, और कम या अधिक यह नगरीय मामला था। उनके इसमें प्रवेश के बाद, इस संगठन ने अपने पूर्व के क्लब चरित्र का परित्याग कर दिया। गाँधी जी ने इसे, एक आधार, आकार और दर्शन जो भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के 'आदर्श प्रकार' से अभिन्न रूप से जुड़े थे, प्रदान किये। बाल गंगाधर तिलक एकमात्र नेता थे जिनका राष्ट्र में व्यापक जनाधार था, वे 1920 में परलोक सिधार गए और इससे भारतीय राजनीतिक जीवन में एक रिक्तता की स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस घटना ने राष्ट्रीय कॉंग्रेस में गाँधी जी का उत्कर्ष तीव्र कर दिया। 1920 में गाँधी जी ने कॉंग्रेस को एक नया संविधान दिया। इस संविधान ने कॉंग्रेस को एक जनसंगठन, इसके चरित्र को ग्रामीण और इसे एक विशिष्ट सामाजिक–आर्थिक कार्यक्रम प्रदान किया। उन्होंने कहा कि, "कॉंग्रेस गूंगे, अधभूखे करोड़ों भारतीयों का जो सात लाख गाँवों में बिखरे हुए हैं, इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वे ब्रिटिश भारत के हों या जिसे भारतीय भारत कहा जाता है, उनका प्रतिनिधित्व करती है।

प्रत्येक जन आन्दोलन के साथ, गाँधी जी ने कॉंग्रेस का आधार और व्यापक बना दिया, और अकल्पनीय रूप से विभिन्न धर्मों, क्षेत्रों और समाज के अलग–अलग वर्ग से बड़ी संख्या में व्यक्तियों को इस संस्था में सम्मिलित किया। महिलाओं और विद्यार्थियों को भी बड़ी संख्या में सम्मिलित किया गया।

जब, उदाहरणस्वरूप, 6 अप्रैल 1919 को भारत में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अपना प्रथम सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया तो उन्होंने देशव्यापी हड़ताल का आह्वान किया और यह भी चाहा कि लोग इसे आत्मशुद्धि दिवस के रूप में मनायें। जनता को नदी या समुद्र स्नान करना था, उपवास रखना था और प्रार्थना करनी थी।

अवज्ञा के उद्देश्य से उन्होंने नमक का चयन किया, जिससे गरीब लोग व्यापक राष्ट्रीय प्रश्न में गहन रूप से संलग्न हो गए। जब बाद में, उन्हें अहिंसात्मक आन्दोलन को निलम्बित करना पड़ा तो आत्मशुद्धि के लिए उन्होंने तीन दिन का उपवास रखा।

गाँधी जी निरंतर संगठन निर्माण के लिए ऐसे प्रतीकों का प्रयोग करते थे जैसे – स्नान, उपवास, प्रार्थना, मौन, इत्यादि। दूसरे शब्दों में, उन्होंने वर्तमान लक्ष्य के लिए परम्परागत का प्रयोग किया और इनका अद्वितीय प्रभाव हुआ।

राजनीति का संरचनात्मक शस्त्र

राष्ट्रीय आन्दोलन को बहुअंगीय और बहुआयामी बनाना गाँधी जी का दृढ़ निश्चय था। दो व्यापक उद्देश्यों को साथ–साथ प्राप्त करना एक सोची–समझी रणनीति थी। भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को राजनीतिक रूप से प्रेरित करना और उनकी भागेदारी को अर्थपूर्ण बनाने के साथ–साथ इस आन्दोलन को मूर्तरूप देना था। गाँधी जी ने व्यापक और विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक कार्यक्रमों का विकास किया। जिनका निर्माण कृषकों, हस्तशिल्पियों, शिल्पकारों, अछूतों (गाँधी जी ने इनके लिए 'हरिजन' शब्द दिया था), महिलाओं, अध्यापकों, विद्यार्थियों, मिल मजदूरों, पूँजीपतियों – संक्षेप में समाज के प्रत्येक वर्ग को तत्काल प्रभावित करने के लिए किया गया था। इस लक्ष्य के लिए, उन्होंने कई संगठनों, जो निःसंदेह स्वैच्छिक प्रकृति के थे, स्वसमर्थकों के हितार्थ निर्मित किए।

अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ, हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, कस्तूरबा गाँधी स्मृति न्यास, नवजीवन न्यास, प्राकृतिक चिकित्सा न्यास, गो सेवा संघ, हिन्दुस्तानी मजदूर संघ, पश्चिमी भारत आदिवासी मजदूर संघ । जनता का विशेष और आर्थिक सुधार गाँधी जी के लिए स्वतंत्रता का अभिन्न भाग था और उनके संसार में, संरचनात्मक कार्य और स्वराज सहचारी थे।

गाँधी जी की सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में क्रियाशील भूमिका ने संपूर्ण देश में साधारण जनता को एक लक्ष्य और अर्थ प्रदान किया। एक विपन्न, परंपरागत रूप से उपेक्षित, व्यक्ति के लिए स्वराज, औपनिवेशिक शोषण, इत्यादि नारे मुश्किल से ही स्थायी रूप से प्रभावशाली हो सकते थे। इसके विपरीत, आर्थिक और सामाजिक गतिविधियाँ उसे सीधा और शीघ्र प्रभावित करती हैं तथा उसे उद्वेलित और उत्प्रेरित कर सकती हैं। द्वितीय, गाँधी जी को यह अवश्य विदित हुआ होगा कि आन्दोलन और विरोध की राजनीति यहाँ तक कि औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध चल रहे संघर्ष में भी एक निरंतर गतिविधि के रूप में नहीं रह सकती। अनिवार्य रूप से कुछ ठहराव और रोक हो सकती है। और राजनीतिक नेता और कार्यकर्ता जब जेल में होंगे तो क्या करेंगे? कताई, छुआछूत व अन्य सामाजिक बुराईयों का निराकरण जैसे संरचनात्मक कार्यक्रम लोगों को – जो जेल के बाहर या अन्दर थे – उन्हें व्यस्त रख सकते थे। साथ ही जब भारत स्वतंत्र होगा तो बिना आर्थिक और सामाजिक प्रगति प्राप्त किए जिसे संरचनात्मक कार्यक्रम सीधे प्रोन्नत करते हैं, अच्छा जीवन नहीं बिताया जाएगा।

एक चतुर संगठन–निर्माता, गाँधी जी, पूर्णता में विश्वास करते थे चाहे वह कोई भी गतिविधि हो गाँधी जी अन्तिम समय तक सावधानी से बारीकियों का अध्ययन करते थे। इससे पूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाती थी – नीति–निर्माण और क्रियान्वयन के मध्य किसी रिक्तता का जोखिम नहीं रह जाता था। नेतृत्व पर गाँधी जी के विचार उस समय के विचारों से मेल खाते थे। राष्ट्र की स्वतंत्रता उनके समय की प्रथम और महानतम चिन्ता थी। इस संदर्भ में, एक जननायक को, एक ऐसी जनता को, जो धर्म, भाषा, जाति और क्षेत्र के आधार पर विभाजित थी, उसे तत्पर करना और औपनिवेशिक शासकों को चुनौती देने के लिए पर्याप्त साहसी बनाना था। महात्मा गाँधी जी के अनुसार यह एक नेता की सही भूमिका थी। यह वर्तमान परिप्रेक्ष्य के एकदम विपरीत है जहाँ एक नेता के पास जनता के लिए भविष्य की कोई स्पष्ट तस्वीर नहीं है, उसका एकमात्र लक्ष्य तो मत प्राप्त करना है।

वित्तीय औचित्य की चिन्ता

सार्वजनिक धनराशि के प्रयोग के सम्बन्ध में गाँधी जी उतने ही उत्साही थे। उन्होंने न्यास सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और जहाँ भी सार्वजनिक धन का सम्बन्ध था वे उसके अन्तिम पैसे तक देखरेख करते थे।

गाँधी जी अधिकतर, आम जनता की धनराशि एकत्रित करते थे। यह वर्तमान विधि के एकदम विपरीत है – आजकल सभी राजनीतिक दल वित्त के लिए बड़े–बड़े व्यापारियों पर निर्भर करते हैं। जब एक साधारण व्यक्ति कुछ पैसे दान में देता है तो उसे उस कारण के बारे में सोचना पड़ता है जो उसका त्याग आगे बढ़ाने वाला है. और इस प्रक्रिया में वह इसके प्रति एक दृढ़ आस्था विकसित कर लेता है। प्रशासन में जनप्रिय भागेदारी को गहन बनाने के लिए गाँधी जी द्वारा प्रयुक्त यह एक तकनीक थी।

सन् 1921 में, उन्होंने 'तिलक स्वराज कोष' में उदारतापूर्वक योगदान करने के लिए जनता से अपील की और उन्हें निराशा नहीं हुई। 1927 में, उन्होंने लिखा, 'इस कोष ने राष्ट्र के विशालतम उद्देश्य की पूर्ति की है। अचानक इतने विशाल संगठन का जन्म, बिना इस राष्ट्रीय विशाल कोष के सम्भव नहीं हो सकता था, लेकिन गाँधी जी इस विचार के पक्ष में नहीं थे कि सार्वजनिक संस्थायें किसी स्थायी कोष या उधार ली गयी राशि से चलायी जाए। उनके ही शब्दों में, एक सार्वजनिक संस्था का अभिप्राय है एक ऐसी संस्था जो जनता की सहमति और जनकोष से परिचालित हो। जब ऐसी संस्था को जनसमर्थन मिलना बन्द हो जाय तो यह अपने अस्तित्व के अधिकार को खो देती है। स्थायी कोष से चलायी जाने वाली संस्थायें बहुधा जनमत की उपेक्षा करती हुई पायी जाती हैं।

काँग्रेस में वास्तुशिल्पी

गाँधी जी के हाथों में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस राष्ट्रीय आन्दोलन बन गयी और इसका लक्ष्य राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति। एक बार लक्ष्य प्राप्ति हो जाय तो गाँधी इसे विघटित करना चाहते थे। कम से कम उनके अनुमान में, काँग्रेस संक्रमणकालीन थी। लेकिन संगठनों में नये लक्ष्यों को खोजने और बनाने की प्रवृत्ति होती है जब वे एक लक्ष्य की पूर्ति के समीप होते हैं और इस प्रकार अपने अस्तित्व को वैध बना लेते हैं। एक प्रसिद्ध मामला विल्किनसन कम्पनी का है कई शताब्दियों से सर्वोत्तम तलवारों की निर्माता थी, इस कम्पनी ने यह अनुभव किया कि तलवारों के प्रयोग के लिए उपयुक्त युग बड़ी शीघ्रता से समाप्त हो रहा है, और कम्पनी के बन्द होने की सम्भावनायें बढ़ रही हैं – यह निःसंदेह, निराशाजनक स्थिति थी, फिर विल्किनसन कम्पनी ने रेजर ब्लेडों के उद्योग में एक बढ़ते हुए बाजार का पता लगा लिया, आज उनके ब्लेड सम्पूर्ण विश्व में सबसे अधिक माँग में है।

लेकिन संघर्ष युग की भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस एक भिन्न संगठन था। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, यह एक ऐसा राष्ट्रीय आन्दोलन था जिसमें विभिन्न और अभिमुखीकरणों के व्यक्तियों की सक्रिय भागेदारी होती है। यद्यपि इसमें कई कमियाँ थीं और 1945 के निर्वाचनों में सत्ता में आ जाने के बाद काँग्रेस में भ्रष्टाचार और गुटबाजी की चर्चा थी, काँग्रेस भारतीय जनजीवन में व्याप्त त्याग, कष्ट सहन और पवित्रता का प्रतीक थी।

गाँधी जी नहीं चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में किसी भी राजनीतिक दल को काँग्रेस की राष्ट्रीय आन्दोलन की ख्याति उत्तराधिकार में मिले। गाँधी को पूर्ण विश्वास था कि स्वतंत्रता के पश्चात् काँग्रेस अभ्युदित होती हुई वैचारिक और राजनीतिक उत्तेजनाओं में अपने पुरातन मूल्यों को बनाए नहीं रख पाएगी और प्रत्येक दल, जो उभ्युदित होगा उसे, सच है, भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस में अपने पैतृक और आध्यात्मिक घर का दावा करना होगा। उन्हें यह भय हमेशा सताता रहता था कि स्वतंत्र भारत में राजनीतिक दल साफ और विशुद्ध नहीं रह पायेंगे। सबसे अधिक, गाँधी जी का यह दृढ़ विश्वास था कि स्वतंत्र भारत में कोई भी स्वयं को काँग्रेस का उत्तराधिकारी न माने और सबको अपने व्यक्तिगत उपलब्धियों के आधार पर मत और वैधता प्राप्त करनी होगी।

जब भारत स्वतंत्र हुआ तो ये समस्त कारण उनके मस्तिष्क में एक भार के रूप में थे। जैसा कि उनका दुर्भाग्य रहा, उन्हें काँग्रेस के नैतिक पतन का दर्शक बनना पड़ा। उनकी मृत्यु के एक दिन पहले, यह 29 जनवरी 1948 का दिन था, उन्होंने वह लिखा जिसे आमतौर पर उनकी अंतिम वसीयत और पवित्र घोषणा समझा जाता है, उनका मत था –

''यद्यपि दो भागों में विभक्त, भारत ने भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस द्वारा विकसित साधनों से स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, काँग्रेस अपने वर्तमान आकार और स्वरूप में यथा – जैसे एक प्रचार वाहन और संसदीय मशीन, अपनी उपयोगिता से अधिक जी चुकी है। भारत को शहरों और कस्बों से भिन्न, अपने सात लाख ग्रामों के संदर्भ में सामाजिक, नैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता अब भी प्राप्त करनी बाकी है। प्रजातांत्रिक लक्ष्य की ओर भारत की प्रगति में सैनिक शक्ति के ऊपर सिविल का संघर्ष अवश्यम्भावी है। इसे राजनीतिक दल और साम्प्रदायिक संगठनों के साथ अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा से पृथक् रखना होगा। इनके लिए और इसी प्रकार के अन्य कारणों से एक आई० सी० सी० (अखिल भारतीय काँग्रेस समिति) वर्तमान काँग्रेस संगठन को विघटित करने एवं लोक सेवक दल के रूप में पुष्पित होने का संकल्प करती है।

परन्तु गाँधी जी इतने जीवित नहीं रहे कि वे अपनी सलाह को कार्यान्वित होते देख सकें। विश्व में कहीं भी, सबसे विशाल जनसंगठन–निर्माता गाँधी जी इसके शान्तिपूर्ण समापन को सुनिश्चित नहीं कर पाए।

नेतृत्व की प्रकृति

गाँधी जी के नेतृत्व का स्रोत न तो कानून था और न कोई पवित्रीकृत सत्ता। वे एक करिश्मागार नेता थे, न कि औपचारिक रूप से नामित परंपरागत नेता – वे जाति से ब्राह्मण नहीं थे, न ही विवेक–वैध स्रोत से शक्ति प्राप्त करने वाले। ऐसा तर्क दिया जाता है कि, "एक करिश्मागार नेता... वह है जिसके पास कोई संगठित "मशीन'' नहीं होती और जिसकी शक्ति किसी संस्थाकृत प्रक्रिया से प्राप्त नहीं की गयी है और जो व्यक्तियों को अपने संदेश से परिवर्तित कर देता है तथा समझाव–बुझाव से उनकी स्वामिभक्ति प्राप्त कर लेता है। 'मेरा मत' उन्होंने कहा था, "उसी सीमा तक प्रभावी होता है जहाँ तक मुझ में दृढ़ विश्वास रहता है। मैं गुप्त रहस्य का उद्घाटन कर दूँ कि मेरी राय का सदस्यों (काँग्रेस) पर बहुधा कोई प्रभाव नहीं पड़ता। स्वतंत्रता के समीप आने पर काँग्रेस पर से गाँधी जी की पकड़ कमजोर पड़ने लगी। और, स्वतंत्रता के पश्चात्, वे अपरिहार्य हो गए – एक ऐसा पतन जो करिश्मागार नेतृत्व में निहित होता है।

गाँधी जी कर्म में आस्था रखते थे और उनका कार्यक्षेत्र, अनिवार्य रूप से, सरकार से बाहर था यद्यपि यह समान धरातल पर था। आत्मसहायता और स्वैच्छिक कर्म पर उनका विश्वास था। वास्तव में, वे सरकार के सम्बन्ध में धूमिल दृष्टिकोण रखते थे और इसकी कोई विस्तृत भूमिका नहीं मानते थे। वे यह कहकर इसकी भर्त्सना करते थे कि यह 'शीर्ष पर भारी बरबादी की कगार तक खर्चीला' है। उन्होंने आगे कहा था कि, "मेरे लिए कानून, व्यवस्था और अच्छी सरकार बहुत महँगी खरीद होगी अगर इसके लिए दिया जाने वाला मूल्य साधारण जनता की निपट दरिद्रता हो।''

गाँधी जी भारत के गाँवों में शिकार की तलाश में घूमते हुए सरकारी कर्मचारियों से घृणा करते थे, क्योंकि, उनके अनुसार, वे विध्वंशात्मक शक्ति थे न कि संरचनात्मक । इसके स्थान पर उनकी आस्था ग्रामपंचायतों पर थी। जब उन्हें यह बताया गया कि भारतीय संविधान में पंचायतों के लिए कोई प्रावधान नहीं है तो उन्होंने बड़ी तीव्र और स्पष्ट प्रतिक्रिया की –

मुझे यह सूचना दी गयी है पूर्व–प्रभावित संविधान में पंचायतों और विकेन्द्रीकरण के निर्देशन के लिए कोई जिक्र नहीं है। अगर हमारी स्वतंत्रता जनता की आवाज को प्रतिविम्बित करना चाहे तो यह निश्चय ही एक भूल है जिसका निराकरण शीघ्र करना होगा। पंचायतों की शक्ति जितनी अधिक होगी, उतना ही अधिक जनहित होगा।

फिर भी, पंचायतों के प्रभावशाली और कार्यकुशल होने के लिए जनता के शैक्षिक स्तर को पर्याप्त ऊपर उठाना पड़ेगा।

गाँधी जी के इस तर्क के कारण ही भारत की संविधान निर्मात्री सभा को शर्मिन्दा होना पड़ा और राज्य के नीति–निर्देशक तत्त्वों में एक अनुच्छेद जोड़ना पड़ा जिसमें कहा गया है, ग्रामपंचायतों के गठन के लिए राज्य कदम उठाएगा और उन्हें शक्ति और सत्ता प्रदान करेगा जो उन्हें स्वशासन की इकाई के रूप में योग्य बनाने के लिए आवश्यक है। वास्तव में गाँधी जी के मूल्यों की योजना ग्रामों के चारों ओर बुनी हुई थी, उनकी दुनिया में विकेन्द्रीकरण सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। 18 जनवरी 1942 को गाँधी जी ने शासन के लक्ष्य की व्याख्या की थी, "लक्ष्य जिसे प्राप्त करना है वह है पूर्ण मानसिक एवं नैतिक विकास संयुक्त मानव सुख। मैं नैतिक विशेषण को आध्यात्मिक के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग करता हूँ। यह विकेन्द्रीकरण के अधीन प्राप्त किया जा सकता है। केन्द्रीकरण, एक व्यवस्था के रूप में, समाज की अहिंसात्मक संरचना से मेल नहीं खाता।

चूँकि भारत स्वतंत्रता की ओर अग्रसर हो रहा था, अतरू गाँधी जी ने अपना सारा ध्यान तत्कालीन समस्याओं की ओर लगाना प्रारम्भ किया। 1937 में, प्रान्तीय स्वायत्तता क्रियाशील हुई और गांधी जी का ध्यान मंत्रियों के उत्तरदायित्वों की ओर गया।

गाँधी जी की मंत्रियों को सलाह

हरिजन के तत्कालीन अंतिम संस्करण में एक महत्वपूर्ण लेख छपा था जिसका शीर्षक था कॉंग्रेस मंत्री। इस लेख में, गाँधी जी ने पद स्वीकार करने की नीति पर अपने विचार एवं कॉंग्रेस घोषणापत्र के संदर्भ में मंत्रियों के लिए क्या करना सम्भव था, दिए। इस लेख के अनुसार–

मंत्रालय एकदम नशाबन्दी लागू करें, शिक्षा को आत्मसमर्थित बनायें न कि मदिरा लगान से समर्थित। यह आश्चर्यजनक विचार प्रतीत हो सकता है लेकिन मैं पूर्णरूप से सुविधाजनक और तर्कसंगत मानता हूँ। कारागारों को सुधारगृहों और कार्यशालाओं में परिवर्तित किया जाय। वे आत्मनिर्भर एवं शैक्षिक हों न कि खर्चीला और दण्डात्मक विभाग । गाँधी–इर्विन समझौते के अनुसार, जिसका अब केवल नमक परिच्छेद शेष है, निर्धन व्यक्ति के लिए नमक मुफ्त होना चाहिए, लेकिन यह नहीं है। कपड़े की समस्त खरीद खादी में ही होनी चाहिए। नगरों की अपेक्षा ग्रामों और किसानों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। यह तमाम व्याख्यायें क्रमबद्ध रूप में नहीं ली गयी हैं। ये पूर्णतरू वैध हैं लेकिन इनमें से एक को भी प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया गया है। पुनः, मंत्रियों के व्यक्तिगत व्यवहार के सम्बन्ध में। कॉंग्रेस के मंत्री किस प्रकार स्वयं को अभिव्यक्त करेंगे? उनका प्रधान, कॉंग्रेस का अध्यक्ष, रेल में तृतीय श्रेणी में यात्रा करता है। क्या वे प्रथम श्रेणी से यात्रा करेंगे। अध्यक्ष खादी की मोटी धोती, कुर्ता और बास्केट से संतुष्ट है, क्या मंत्रियों को पश्चिमी पैमाने में पश्चिमी शैली में खर्च की जरूरत होगी? कॉंग्रेस–जनों ने स्वयं को पिछले सत्रह वर्षों में कठोर सरलता में अनुशासित किया है। राष्ट्र मंत्रियों से अपेक्षा करेगा कि वे अपने प्रान्तों में प्रशासन के अन्तर्गत उसी सरलता को लागू करें। वे इससे शर्मिन्दा नहीं होंगे। गाँधी जी के विचार संगठन–निर्माण और संगठनों के सम्बन्ध में किसी विधिवत या व्यवस्थित अध्ययन से प्रवाहित नहीं हुए हैं। मानव स्वभाव का गहन अध्ययन होने के कारण, विशेषकर, भारतीय मस्तिष्क का, वह भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए रणनीति एवं संयंत्रों का विकास कर रहे थे और इसी प्रक्रिया में, उन्हें अनिवार्य रूप से, अपनी संगठनात्मक प्रतिभा का भी प्रदर्शन करना था। यद्यपि, स्वयं उन्होंने एक राष्ट्रव्यापी, एकता के सूत्र में आबद्ध, पदसोपानीय इकाई राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए बनायी थी, लेकिन वे व्यापक औपचारिक संगठनों से घृणा करते थे। मूलरूप से, गाँधी जी संगठन–विरोधी पुरुष थे।

अध्याय – 3

जवाहरलाल नेहरू

(JAWAHARLAL NEHRU)

लोक प्रशासन के बारे में जवाहर लाल नेहरू के विचारों को लिखना सरल कार्य के साथ–साथ कठिन भी है। यह नेहरू जी के लिए आसान है, जिन्होंने देश के स्वतंत्रता संघर्ष में अग्रणी भूमिका निभाई और 1947 से 1964 तक (मृत्यु पर्यन्त) भारत के प्रधानमंत्री के रूप में कार्य किया, इस प्रकार उनके पास लोक प्रशासन विषय से सम्बन्धित बड़ी मात्रा में सामग्री उपलब्ध थी। परन्तु किसी अन्य व्यक्ति के लिए लोक प्रशासन विषय पर नेहरू के अवलोकन और भाषणों की व्याख्या करना बहुत कठिन कार्य है। इसका मुख्य कारण यह भी है कि नेहरू जी प्रत्येक घटना पर नहीं बोलते थे।

प्रत्येक व्यक्ति को यह याद रखना चाहिए कि प्रधानमंत्री पद की प्रकृति अनुसार इसकी कुछ निर्धारित भूमिकाएं एवं क्रियाएँ होती हैं। कई बार यह साफ नही होता कि संगठन प्रमुख के रूप में कार्य करते समय यह प्रधानमंत्री का कर्तव्य था या फिर स्वयं के विचारों की अभिव्यक्ति। जैसे व्यक्तिगत तौर पर एक व्यक्ति काला बाजारी करने वालो को फांसी पर लटकाने की बात करता है परन्तु ज बवह किसी पद पर आसीन हो तो इस प्रकार के मामलों मे वहीं व्यक्ति मृदु और सहनशील बन जाता है। ब्रिटिश राज के समय की प्रशासनिक संरचना से नेहरू प्रसन्न नहीं थे लेकिन फिर भी स्वतंत्रता के बाद उन्होनें कोई बड़ा प्रशासनिक सुधार नहीं किया। इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देना मुश्किल लगता है।

नेहरू ऐतिहासिक दृष्टि तथा बड़े परिप्रेक्ष्य के साथ बहुआयामी व्यक्तित्व रखते थे। उनके प्रशासनिक विचारों तथा व्यवहार को समझने के लिए नेहरू के गुणों को जानना आवश्यक है। उन्होंने अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष ग्रेट ब्रिटेन में बिताएं, इस समय पुँजीवाद अपने शिखर पर था। फैबियंस के द्वारा इस समय सुधारों की मांग भी की जा रही थी। नेहरू जी भी समाजवाद, सामाजिक मामलों मे राज्य का हस्तक्षेप, सार्वजनिक वस्तुओं पर सार्वजनिक अधिकार जैसे मुद्यों को आत्मसात कर लिया। ब्रिटिश विश्वविद्यालय में माननीय मामलों का छात्र रहते हुए उन्होंने भारत को एक अलग दृष्टिकोण से देखा। इस प्रकार उनका दृष्टिकोण क्षेत्रिय न रहकर वैश्विक बन गया और रूद्रिवादिता और धर्मतन्त्र उनके गौण बन गए। नेहरू जन्म से ही धर्मनिरपेक्ष थे। वे अर्न्तराष्ट्रीय समुदाय में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका नियत करना चाहते थे। नेहरू जी मानवतावादी थे और किसी भी प्रकार के अन्याय तथा शोषण के विरोधी थे। वे विज्ञान और तकनीक मे आस्था रखते थे और भारत के भविष्य के लिए इनको महत्वपूर्ण मानते थे। 1930 के दशक में वे साँख्यिकी की विशेष वकालत करने लगे थे। वे पश्चिमी उदारवाद के समर्थक थे तथा भारतीय राजनीति के अन्तिम फैविंयस थे। हालाँकि नेहरू जी पश्चिमी राजनीतिक मूल्यों से प्रभावित थे फिर भी वे लोकतंत्र, साम्राज्यवाद तथा प्रशासनिक संरचना में भेद करते थे। वे ब्रिटिश लोकतंत्र के प्रशसंक थे किन्तु साम्राज्यवाद के कठोर आलोचक थे।

स्वतंत्रा से पूर्व नेहरू के विचार :– राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान जवाहरलाल नेहरू ने प्रशासन पर अपने विचार दिए हैं हालांकि इस समय तक उन्हे प्रशासन का कोई व्यवहारिक ज्ञान नही था। उनका प्रशासनिक अनुभव सिर्फ इतना था कि वे 1924–25 में इलाहबाद म्युनसिपल बोर्ड के अध्यक्ष रहे थे। वे लोक प्रशसन को भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मुख्य हिस्सा मानते थे। 1935 ई0 में उन्होने लिखा था कि मेरा यह पूर्ण विश्वास है जब तक भारत में इंडियन सिविल सर्विस प्रशासनिक और लोक सेवाओं का कार्य कर रही है तब तक कोई भी नया आदेश लागू नहीं हो सकता। सतावादी भाव तथा स्वतंत्रता साथ नहीं रह सकते इसलिए यह जरूरी है कि आई सी एस तथा समानान्तर सेवाओं को समाप्त किया जाए।

जब 1946 ई0 में वे अन्तरिम सरकार के प्रधानमंत्री बने तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में उन्होने कहा–सिविल सेवाएँ मानसिक दृष्टिकोण से पत्थर बन गई है वे पुरानी हो गई है तथा उनके पास पुरानी तकनीके हैं और समय के साथ नहीं चल रही है, देखना यह है कि इस प्रकार की परिस्थितयों मे हम कितने समय तक कार्य कर सकते हैं। पिछले तीन–चार महीनों का अनुभव यह है कि अधिकारियों ने अपना व्यवहार और दृष्टिकोण नही बदला है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नेहरू के विचार :– राष्ट्रीय प्रशासन पर नेहरू के विचार साफ एवं स्पष्ट थे और ऐसा लगता था कि उन्हें जब भी अवसर मिलेगा वे प्रशासन तथा नौकरशाही मे आवश्यक परिवर्तन करेंगे। अगस्त 1947 में भारतीय प्रधानमंत्री बनने पर उन्हे ऐसा अवसर मिला। किन्तु तथ्य बताते हैं कि विरासत में मिला प्रशासन ऐसे ही चलता रहा। इस मुद्दे पर उनकी चुप्पी एक पहेली बन गई। शायद इसके मुख्य कारण निम्नलिखित थे।

प्रथम तो वह रास्ता जिससे भारत ने ब्रिटिश से स्वतंत्रता प्राप्त की थी। ब्रिटिश सरकार ने भारत को स्वतंत्रता देने का सवैंधानिक तरीका अपनाया। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के द्वारा भारत को स्वतंत्रता मिली। इस समय जो घटित हुआ वह कानुनों, नियमों व अधिनियमों के अनुसार हुआ। सम्पूर्ण वातावरण कठोर सवैंधानिक और विधिपरायण था। इस प्रकार उस समय सरकार में कोई बड़ा परिवर्तन सम्भव नहीं था। भारत में स्वतंत्रता के बाद प्रशासन की पुरानी व्यवस्था बनाए रखने में नेहरू का स्वयं का स्वभाव भी कम जिम्मेदार नही है। वह पुरातन पश्चिमी प्रकार के उदारवादी थे। साथ ही लोक प्रशासन ने भी नेहरू के प्राचीन विचारो मे बदलाव लाने के निरन्तर कोशीशें शुरू की। नौकरशाही ने इस दौरान अपनी महता को प्रमाणित किया तथा स्वयं को राष्ट्र के कार्यों के लिए ही बताया। शायद इसीलिए नेहरू ने यह जानते हुए भी कि गिरिजा शंकर प्रसाद पहले भारत विरोधी गतिविधियों मे शामिल रहे है फिर भी उन्हें विदेशी मामलों का मंत्री बनाया। इस प्रकार स्वतंत्र भारत में भी साम्राज्यवादी काल की प्रशासनिक व्यवस्था निरन्तर बनी रही। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के प्रशासन से संबंधित प्रावधानों को भी थोड़ी बहुत शब्दावली में बदलाव कर अपना लिया गया। किन्तु प्राचीन प्रशासनिक व्यवस्था को बिना बदलाव के अपनाने का नेहरू का यह निर्णय विवादास्पद बन गया। इस निर्णय ने राजनीतिक नेतृत्व को काई बड़ा परिवर्तन नही करने दिया। इसी समय लोक प्रशासन में सुधार कर राष्ट्र के लिए नए लक्ष्य और उम्मीदे स्थापित करने का अवसर भी समाप्त हो गया। यह याद रखा जाना चाहिए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बड़े प्रशासनिक सुधार करने का एक महत्वपूर्ण अवसर था।

इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति को यह शंका है कि प्रशासन से संबंधित मामलों मे नेहरू की कोई रूचि थी। कुछ लेखकों का मानना है कि लोक प्रशासन से संबंधित विषयों को सरदार पटेल की सौंपकर नेहरू संतुष्ट हो गए। संविधान के मसौदे में भी अखिल भारतीय सेवाओं का प्रावधान नहीं था जिसे बाद मे नवम्बर 1948 में सरदार पटेल के नेहरू को लिखे पत्र के बाद सम्मिलित किया गया।

आई. सी. एस. के सदस्य एच0 वी0 आर0 लेंगर, जो नेहरू के प्रिंसिपल सचिव रहे के अनुसार, नेहरू के लिए प्राचीन बातों के बारे में सोचने का समय नहीं था क्योंकि उन पर वर्तमान कार्यो का दबाव था। नेहरू नौकरशाही को ऐसा वर्ग भी नही मानते थे जिनके साथ किसी समस्या पर बातचीत की जा सके। नेहरू एक अद्भुत व्यक्ति थे जो भारत को अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत करते थे और उन्होंने अपने आप को प्रशासनिक जंगल में कभी नही उलझाया।

विभिन्न संस्थाओ का निर्माण :– नेहरू दर्शन, इतिहास, राजनीति, विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र की अवधारणाओं के महत्वपूर्ण जानकार थे। इतिहास के एक छात्र के रूप में वे चाहते थे कि भविष्य विज्ञान और तकनीक द्वारा प्रभावित हो। 1937 में उन्होने अनुभव किया कि विज्ञान आज के युग की महत्वपूर्ण धारणा है तथा आधुनिक युग में सबसे प्रभावकारी तत्व है। इसी प्रकार उन्होने राष्ट्रीय योजना पर बल दिया तथा राष्ट्रीय योजना पर बल दिया तथा राष्ट्रीय योजना समिति का निर्माण किया जिसने भारत के विकास के लिए अनेक रिपोर्ट प्रस्तुत की। उन्होने राष्ट्रीय योजना का यह विचार अपनी 1927 के सोवियत युनियन की यात्रा से प्राप्त किया। भारत के प्रधानमंत्री रहते उन्होने सामाजिक–आर्थिक योजना की बात की तथा राष्ट्रीय विकास हेतू 1950 में योजना आयोग की स्थापना की। योजना आयोग के द्वारा न केवल देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया गया बल्कि इसने प्रशासन

की उचित पुनःसंरचना तथा परिवर्तन के सुझाव भी दिए। राष्ट्रीय विकास परिषद भी नेहरू का ही दृष्टिकोण था तथा 1952 मे इसकी स्थापना में उन्होने महत्वपूर्ण रूचि ली थी। 1957 में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए उन्होने प्रत्येक राज्य मे ग्रामीण स्थानीय सरकार के लिए पंचायती राज को अपनाने की बात की। पंचायती राज में उनकी गहरी रूचि थी तथा वे इसे सफल बनाना चाहते थे। 1954में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना में भी उन्होंने सहयोग किया तथा 1964 ई0 तक वे इसके अध्यक्ष भी रहे। वे सार्वजनिक उपक्रमों के भी समर्थक थे। नेहरू इस बात पर जोर देते थे कि प्रशासनिक अधिकारीयों की योग्यता इस बात में है कि वे साधारण मानव की कितनी सेवा करते हैं। वे चाहते थे कि अधिकारी सचिवालय में न रहकर क्षेत्र में घुमे। वे सिविल सेवकों की तटस्था की धारणा को भी नही मानते थे। नेहरू जी नौकरशाही को प्रशासन और लोगों के बीच बाधा मानते थे। वे कहते थे कि नियम और अधिनियम सरकार के कार्यो की गति को धीमा करते हैं।

जवाहरलाल नेहरू का प्रशासन में कार्य अध्ययन तथा ओ एंड एम को अपनाने का सुझाव देते थे। नेहरू का एक महत्वपूर्ण योगदान यह भी था कि वे विभिन्न संस्थानों को संविधान के अनुसार प्रतिष्ठापित करना चाहते थे। वे नियंत्रक एव महालेखा परीक्षक को भारत का एक महत्वपूर्ण बुर्ज मानते थे जो कार्यकारीयों पर नजर रखता है तथा गलती के लिए कोई स्थान नही छोड़ता है। वे संघ लोक सेवा आयोग की सिफारिशों का भी सम्मान करते थे। 17 वर्ष तक भारत के मुख्य कार्यकारी के रूप में उन्होने भारतीय प्रशासन पर प्रत्यक्ष अर्न्तदृष्टि रखी। दुर्भाग्यवश, उन्होने अपने प्रशासनिक अनुभवों का कोई व्यवस्थित और संगठित अध्ययन नही छोड़ा, फिर भी उन्होने प्रशासन पर अपने विचार रखे हैं। जैसे उनकी प्राथमिकता लघु कैबिनेट एक साथ कार्य नहीं कर सकती। बड़ी कैबिनेट जब दो या तीन पंक्तियों मे बैठ जाए तो अनौपचारिक बैठक लगती है। 1948 में बजट पर बोलते हुए उन्होने प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण का वर्णन किया–यदि कोई सोचता है कि मंत्रियो की नियुक्ति से विभाग नियंत्रित होते हैं तो वह गलत है बल्कि मंत्री ही औरो के द्वारा नियंत्रित होते है। वे प्रशासनिक मशीन को समझने में असफल रहते है तथा प्रशासकों द्वारा नियंत्रित होते है। वे कहते है कि यदि पटढ़ाभि सीतारमैया सचिवालय के किसी भवन की एक मील यात्रा करे वो यह किसी युद्ध कार्यालय की 70 मील यात्रा के समान होगी। इस प्रकार प्रत्येक देश मे सचिवालय इतने उलझे हुए है कि उन्हें समझना मुश्किल है। अधिक मंत्रियों की नियुक्ति समाधान नहीं समस्या है। साथ ही लोकतांत्रिक तरीके से प्रशासनिक संस्थाओं को नियन्त्रित करना एक बड़ी समस्या है। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक मामले जब अधिक तकनीकी हो जाते है तो संसद के लिए इन्हें विस्तृत मे समझना मुश्किल हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन बताता है कि नेहरू लोकतंत्र में संसदीय नियंत्रण की समस्याओ को समझते थे। वे समाज में विज्ञान और तकनीक की महता को देखते हुए लोक प्रशासन में विशेषज्ञो को महत्वपूर्ण भूमिका के समर्थक थे। इस सव परिदृश्य अनुसार नेहरू का समाज में लोक प्रशासन की सही भूमिका और स्थान हेतू महत्वपूर्ण योगदान था।

निष्कर्षत नेहरू जी का व्यक्तित्व विभिन्न क्षेत्रों में दिखाई पड़ता है और लोक प्रशासन उनमें से एक है। परन्तु वास्तव में वे एक दार्शनिक, चिंतक, स्वपनदर्शी तथा उच्च उड़ान वाले व्यक्ति थे। लोक प्रशासन से वे ज्यादा संबंधित नहीं रहे परन्तु वे एक महान व्यक्ति थे। वास्तविक रूप में वे श्रद्धालु व्यक्ति थे परन्तु समय के साथ ऐसे चापलूसो और योजनाकारों से घिर गए जिन्होंने उनके काम में बाधा उत्पन्न की तथा वे आधारभूत सच्चाई से दूर होते चले गए। अपनी सहनशीलता और पसंद के कारण जब प्रताप सिंह कैरो ने सरकार के सामने बड़ी परेशानी खडी की तो भी उन्होंने को बड़ा निर्णय नहीं लिया। नेहरू जी ने एक लम्बी यात्रा तय की इसलिए उन्होंने कुछ मुद्दों की उपेक्षा की। लोक प्रशासन पर उनका प्रभाव संरचनात्मक अधिक तथा कार्यात्मक कम था। उनके द्वारा अनेक नई संरचनाओं तथा संस्थानों की स्थापना की गई। किसी को यह भी नहीं भूलना चाहिए कि प्रमुख कार्यकारी चांहे वो राजनीतिक हो या प्रशासनिक उनकी ताकत पद के साथ होती है और जब वे पद त्यागते है तो ताकत कम होती है तथा संगठन में उनकी कमजोरी फैल जाती है। यह सभी शीर्ष व्यक्तियों के लिए शर्मिंदगी भरा है और नेहरू भी उनमें से एक थे।

अभ्यास हेतु प्रश्न

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. सप्तांग सिद्धांत की विवेचना किजिए।
2. कौटिल्य के विचारों की प्रासंगिकता बताएं।
3. महात्मा गांधी का प्रशासनिक विचारक के रूप में वर्णन करें।
4. जवाहरलाल नेहरू का प्रशासन में योगदान बताएं।

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अर्थशास्त्र में कितने अधिकरण हैं।
2. कौटिल्य ने भ्रष्टाचार के कितने तरीके बताएं है।
3. महात्मा गांधी का प्रथम सत्याग्रह कौन सा था।
4. जवाहरलाल नेहरू ने किन संस्थाओ का निर्माण किया।
5. स्वतंत्रता के बाद नेहरू जी के लोक प्रशासन पर विचारों का संक्षिप्त वर्णन करें।
6. महात्मा गांधी की मंत्रियों को सलाह का वर्णन करें।

अध्याय – 4

सरदार वल्लभभाई पटेल

(SARDAR VALLABHBHAI PATEL)

वर्तमान भारतीय राजनीतिक इतिहास में सरदार वल्लभभाई पटेल (1875–1950) एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व थे। एक प्रशासक के रूप में उनका कोई तुल्य नहीं था। जैसा कि हम आज मानते हैं, वे भारत के एकीकारक थे। वे अग्रिम पंक्ति के सक्रिय प्रशासक थे। और सहज ही उन्हें चाणक्य की श्रेणी में रखा जा सकता है जो अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध लेखक, और मौर्य साम्राज्य के निर्माता थे। लेकिन पटेल ने भारतीय एकीकरण का कार्य मात्र पाँच वर्षों में ही सम्पन्न कर लिया था। इससे भी अधिक, उनके प्रशासनिक कार्य एक व्यापक क्षेत्र को ढक लेते हैं। जब इन्हें एक साथ मिलाया जाय तो वे एक ऐसा निर्माण प्रस्तुत करते हैं जिसे एक प्रजातंत्र में आदर्श लोक प्रशासन कहा जा सकता है।

सरदार पटेल को एक ऐसे प्लेटो के रूप में देखना जो प्रशासनिक स्वप्नलोक सिद्धान्त बना रहा हो, व्यर्थ है। पटेल इस धरा से थे और धरातल पर विचरते थे। वे यथार्थवादी थे, और केवल एक निश्चल उद्देश्य के प्रति कटिबद्ध थे। वे एक पक्के देशभक्त थे और उनका स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एकमात्र लक्ष्य था राष्ट्र का एकीकरण और प्रशासन को सुदृढ़ बनाना जो स्थायित्व और विकास का मुख्य यन्त्र है। उनके यथार्थवाद ने उन्हें नमनीय दृष्टिकोण प्रदान किया। चूँकि पटेल राष्ट्र–निर्माण और राष्ट्र–संरचना में सन्निहित उभरती हुई समस्याओं से जूझ रहे थे, उन्हें सहिष्णुता और सामन्जस्य की प्रबल भावना विकसित करनी थी। वे अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होंगे लेकिन साथ ही साथ उन्हें एक विशेष अवसर के लिए बनायी गयी रणनीति भी विकसित करनी थी। दूसरे शब्दों में, सरदार पटेल एक प्रशासक एवं एक कुशल शासक के अद्‌भुत मिश्रण थे। एक कुशल शासक एक स्वप्न, एक न्यायोचित भावना व एक योजनासम्पन्न व्यक्ति होता है। लेकिन आवश्यक नहीं कि वह अच्छा प्रशासक भी होः वह यह न जानता हो कि वह अपने स्वप्न को कैसे प्राप्त करे। ठीक इसी प्रकार, एक प्रशासक के पास कोई स्वप्न न हो। सरदार पटेल एक दूरदर्शी शासक एवं एक योग्य प्रशासक दोनों ही थे।

सन् 1945 में निर्मित अन्तरिम सरकार में सरदार पटेल गृहमंत्री बने। इसके अतिरिक्त वे सूचना एवं प्रसारण मंत्री तथा देशी राज्यों के भी मंत्री थे। भारत में गृह मंत्रालय सदैव ही अत्यधिक संवेदनशील रहा है, सरलता से अन्य सभी मंत्रालयों से अधिक महत्वपूर्ण, विशेषकर उन अशान्त दिनों में। सरदार पटेल गृह मंत्रालय के प्रधान थे इसी कारण उन्हें उन अशान्त प्रारम्भिक दिनों में इस नवजात गणतंत्र को दिशा देने का प्रत्यक्ष दायित्व निभाना था। भारतीय लोक सेवा के प्रतिष्ठित सदस्य गिरिजा शंकर बाजपेई लिखते हैं, उन खतरनाक दिनों में हमारे नवीन राष्ट्र का भाग्य एक तराजू पर लटका हुआ था। कि, थोड़ी अस्थिरता के पश्चात् यह तराजू स्थिर हो गया जो केवल लोगों का अपने नेताओं पर आस्था और विश्वास के कारण नहीं बल्कि इन नए गृहमंत्री की दृढ़ इच्छाशक्ति एवं सबल हाथों के कारण सम्भव हो सका। लोक सेवा विभाग गृह विभाग के अधीन था अतरू सरदार पटेल को लोक सेवा को राष्ट्रीय एकता, प्रजातंत्र और विकास के प्रति संवेदनशील बनाने का सुअवसर मिला।

यह उचित होगा कि वल्लभभाई पटेल के व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले मुख्य प्रभावों का परीक्षण किया जाए। वे सौराष्ट्र के एक गाँव में पैदा हुए थे और एक साधारण किसान परिवार से सम्बन्धित थे। इससे उन्हें ग्रामीण भारत की कृषकों की समस्याओं और चिन्ताओं का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त था। इसीलिए, यह स्वाभाविक भी था कि वे अपने दृष्टिकोण में जीवन भर एक कृषक ही रहे। उन्होंने एक सादा एवं संयमी जीवन जिया। सभी तथ्यों से यह स्पष्ट

होता है कि उनका जीवन मितव्ययी रहा तब भी जब स्वतंत्रता के पश्चात् उन्होंने अपना कर्मक्षेत्र दिल्ली बनाया। किसी को यह भी नहीं भूलना चाहिए कि पटेल स्वतंत्रता सेनानियों के परिवार में से थे। उनके पिता ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था। इस प्रकार ज्वलन्त देशभक्ति उनकी विरासत थी न कि प्राप्त किया गया गुण ।

तीसरा प्रभाव जिसने उनकी मानसिकता की संरचना की थी वह था उनकी स्वयं की वित्तीय पृष्ठभूमि । पटेल का लालन–पालन बहुत ही साधारण परिस्थितियों में हुआ था जिन्होंने उन्हें गरीबी एवं इसके परिणामों से गहरे रूप से परिचित किया था। इस प्रकार उन्हें राष्ट्र के साधारण मनुष्य की कठिनाईयों और परेशानियों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया। गरीबी के स्वाद ने शायद उनमें स्वावलम्बी होने की तीव्र उत्कण्ठा भर दी। केवल कठोर परिश्रम द्वारा वे एक सम्पन्न अधिवक्ता बन गए और सुख–सुविधापूर्ण जीवन तथा पश्चिमी जीवन शैली अपनाने में सफल हुए।

लेकिन महात्मा के साथ सम्बन्ध ने उन्हें पूर्णरूप से परिवर्तित कर दिया और उन्होंने गाँधीवादी जीवन–पद्धति अपना ली। पटेल में संगठन बनाने की स्वभाविक प्रतिभा थी जिसका उन्होंने समय पर परिचय दिया। अपने अध्यक्षीय काल में उन्होंने काँग्रेस के वित्तीय लेखे–जोखे पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने काँग्रेस मंत्रालयों के साथ ही साथ दल मशीन पर भी नजर रखी। वे ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं छोड़ते थे, जो भ्रष्टाचार में संलग्न हो। जब सिन्ध के आर0के0 सिंध्वा ने 1931 में कराची अधिवेशन के लिए एकत्रित धनराशि दल कोष में जमा नहीं की तो उन्होंने सार्वजनिक रूप से अपनी नाराजगी प्रकट की और यहाँ तक कि, "धमकी भी दी कि अगर राशि दल कोष में जमा नहीं करायी गयी तो अनुशासनात्मक कार्यवाही करेंगे। यहाँ पर यह उल्लेख रुचिकर होगा कि उन्होंने अपने पुत्र (डाह्या भाई) को पारी से पहले लाभ न मिले को सुनिश्चित करने के लिए सकारात्मक कदम उठाए।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों के युसुफ मेहरली समाजवादी झुकाव वाले महान नेता थे, उन्होंने सरदार पटेल की प्रशासनिक क्षमता को श्रद्धांजलि दी थी, उन्होंने कहा था कि "पटेल भारत में सबसे योग्य संगठन–निर्माता एवं सबसे अधिक कठोर हैं। अपने ही हाथों से उन्होंने एक ऐसी राजनीतिक मशीन की संरचना और निर्माण किया है जिसने न केवल उनके कई विरोधियों को तोड़ डाला है बल्कि विदेशी नौकरशाही को भी, कई बार चकित एवं भविष्य में गम्भीर खतरों के आभास से डरा दिया है। अपने जीवन में पटेल ने प्रान्तों में काँग्रेस को नियंत्रित किया था और दूसरे लोग उनकी ओर भय और आदर के मिश्रित भाव से देखते थे। अपने सभी बाकी देशवासियों की भाँति पटेल भी औपनिवेशिक नौकरशाही के प्रबल आलोचक थे। 1931 में, भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने घोषणा की–

हमें पढ़ाया गया है कि हम सोचें कि हमारा नागरिक प्रशासन (वह है, पूर्ण स्वराज के अधीन, भारत की माँग) एक अकार्यकुशल और भ्रष्ट होगा अगर हम उच्च वेतन वाले ब्रिटिश नागरिक सेवकों की योग्य सहायता त्याग दें। पिछले वर्षों में काँग्रेस ने जिन प्रशासनिक शक्तियों का प्रदर्शन किया है और यह तथ्य कि इसकी सहायता के लिए बड़ी संख्या में श्रेष्ठ नर–नारी बिना वेतन या न्यूनतम वेतन के खिंचे चले जा रहे हैं उससे भ्रष्टाचार और अकार्यक्षमता का भय पर्याप्त मात्रा में समाप्त हो जाना चाहिए। किसी भी सम्भावित भ्रष्टाचार का उच्चतम अनुमान भी हमारी दुर्बल राष्ट्रीय निधि पर उतना बड़ा बोझ नहीं होगा जितना कि इस भ्रष्टाचार को रोकने के लिए दी जाने वाली फीस। अन्त में उन्होंने कहा, यह अतः आवश्यक है कि अगर भारत को स्वावलम्बी होना है तो उसे सिविल सेवा व्यय पर बहुत अधिक कटौती करनी होगी और सिविल सेवा के वेतन भत्तों में महत्वपूर्ण कमी करनी होगी। स्वतंत्रता ने उनके दृष्टिकोण को बदल दिया।

स्वतंत्रता के कुछ ही माह पूर्व, पटेल ने संविधान निर्मात्री सभा में सिविल सेवा के प्रति अपनी नाराजगी प्रदर्शित की थी, मैंने गुड़गाँव (पंजाब का और अब हरियाणा का एक जिला) के जिला मजिस्ट्रेट को हटाने का प्रयास किया। मैंने पंजाब के राज्यपाल को लिखा, मैंने वायसराय से सिफारिश की। लेकिन मेरे लिए उसे हटाना बहुत कठिन हुआ। उन्होंने जन प्रतिनिधियों को भूतकाल भूल जाने की सलाह दी। ष्हमने बहुत वर्षों तक अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष

किया। मैं उनका सबसे बड़ा शत्रु था और वे भी मुझे ऐसा ही समझते थे... (लेकिन अब वे जानते हैं) मैं उनके सामने स्पष्ट हूँ और वे (सिविल सेवक) मुझे अपना विश्वसनीय मित्र मानते हैं। जब स्वतंत्रता मिली तो वे इस सेवा के प्रबल समर्थक बन गए। सन् 1949 में, वे, इसके समर्थन में, संविधान निर्मात्री सभा में उठ खड़े हुए –

''मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि इन कठिन समयों में मैंने इनके साथ काम किया है। मैं एक भारी उत्तरदायित्व की भावना से कह रहा हूँ और मुझे कबूल भी करना चाहिए कि देशभक्ति के बिन्दु पर, वफादारी के बिन्दु पर, विश्वसनीयता के बिन्दु पर और योग्यता के बिन्दु पर इनका विकल्प नहीं है। वे उतने ही अच्छे हैं जितने हम ... मैं इस सदन में इसे प्रमाणित भी करना चाहता हूँ कि अगर पिछले दो या तीन वर्षों में सिविल सेवा सदस्यों ने विशेष रूप से एवं वफादारी से व्यवहार न किया होता तो यह संघ धराशायी हो गया होता। और प्रशासनिक समस्याओं से सम्बन्धी प्रस्तावों में उन्होंने पेशेवर सिविल सेवकों का समर्थन किया और यहाँ तक कि उन्हें अपना विश्वसनीय सलाहकार और प्रशासक माना।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, प्रशासन पर पटेल के विचार व्यापक क्षेत्र में फैले हैं जिन पर ध्यान जाना चाहिए। लेकिन उनके सबसे महत्वपूर्ण योगदान दो हैं – नवनिर्मित भारत में करीब पाँच सौ देशी रियासतों का विलय व एकीकरण, तथा एक अखिल भारतीय सेवा का निर्माण। यह कहना पर्याप्त है कि आधुनिक भारत, जैसा हम इसे समझते हैं, वह पटेल के अथक प्रयत्नों का परिणाम है, और अधिक कहने की यहाँ पर आवश्यकता नहीं है। हमें अपना ध्यान उनके दूसरे योगदान की ओर लगाना चाहिए वह है अखिल भारतीय सेवायें। जैसा कि विदित है, ये सेवायें राष्ट्रीय दृष्टिकोण से, उभरते हुए संघवाद के प्रतिकूल होने के कारण एक चुभते हुए काँटे की भाँति थी। जब द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् संवैधानिक परिवर्तनों पर विचार हो रहा था तो किसी ने भी अखिल भारतीय सेवाओं के प्रश्न को नहीं उठाया। अक्टूबर 1946, को गृह सचिव ने भारतीय सिविल सेवा में भर्ती समाप्त करने की घोषणा की। यह संविधान परिवर्तनों को क्रियान्वित होने के बहुत पहले ही ब्रिटेन की सेवाओं के साथ सम्बन्ध–विच्छेद का प्रथम स्पष्ट संकेत था। अस्वाभाविक नहीं, कि सिविल सेवा अपने भविष्य के बारे में अनिश्चित हो गयी और इसका मनोबल भी गिर गया।

सरदार पटेल भारत में औपनिवेशिक नौकरशाही को स्वतंत्र भारत में सशक्त बनाना चाहते थे। पटेल इस इस्पाती ढाँचे को भारत की प्रशासनिक एकता का दुर्ग मानते थे तथा आश्वस्त थे कि प्रशासनिक एकता जो स्वतंत्र भारत के लिए परम आवश्यक थी वह इस इस्पाती ढाँचे को बनाए रखकर ही प्राप्त की जा सकती थी। गृह सचिव के द्वारा आई० सी० एस० भर्ती समाप्ति सुनकर पटेल ने शीघ्रता से काम लिया और दो दिनों में ही, आवश्यक वैकल्पिक प्रबन्ध पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन जिसे प्रान्तीय प्रधानमंत्री सम्मेलन के नाम से जाना जाता है, का आयोजन किया। द टाइम्स (लन्दन) ने गृह सचिव (मंत्री) के भर्ती समाप्ति निर्णय पर यह टिप्पणी दी, 'जितना शीघ्र गृहमंत्री का नियंत्रण समाप्त होगा और वर्तमान ढाँचा गिरेगा उतना ही अच्छा होगा।'

नवीन व्यवस्था में अखिल भारतीय सेवायें

स्मरण हेतु, युद्धकाल में गृह सचिव ने आई० सी० एस० और आई० पी० एस. में भर्ती को समाप्त कर दिया था और जब शान्ति स्थापित हुई तो भारत में संवैधानिक परिवर्तनों के कारण इसे पुनरू प्रारम्भ नहीं किया जा सका। 1946 में जवाहरलाल नेहरू के प्रधानमंत्रित्व में अन्तरिम सरकार स्थापित हुई और अब स्वतंत्रता भी साफ दिखाई देने लगी थी। जब नव–भारत अभ्युदित हो रहा था तो एक समय भारतीय नेतृत्व को चुभने वाला काँटा, अखिल भारतीय सेवा संस्था का वरण किया जाने लगा और इस गाथा में सरदार वल्लभभाई पटेल ने अग्रदूत की भूमिका निभायी।

प्रान्तीय प्रधानमंत्री सम्मेलन अपने मस्तिष्क में अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा के पुनर्जन्म की योजना के अनुरूप सरदार पटेल ने 20 और 21 अक्टूबर 1946 को प्रान्तीय प्रधानमंत्रियों का एक सम्मेलन आयोजित किया। लेकिन गैर काँग्रेस दलों द्वारा शासित प्रान्तों का प्रतिनिधित्व मंत्री स्तर के राजनीतिक प्रतिनिधि या नागरिक सेवकों

द्वारा किया गया। पंजाब, जहाँ यूनियनिस्ट पार्टी सत्ता में थी, का प्रतिनिधित्व इसके राजस्व मंत्री ने किया था। सिन्ध का प्रतिनिधित्व इसके मुख्य सचिव और बंगाल जहाँ मुस्लिम लीग सत्ता में थी उसने एक अतिरिक्त सचिव स्तर के नागरिक सेवक को भेजा था। उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त के प्रधानमंत्री डॉ. खान साहब सम्मेलन में दूसरे दिन के अपराह में ही उपस्थित हो पाए। हाँ, सरदार वल्लभभाई पटेल, इस सम्मेलन के पथ–प्रदर्शक, दोनों ही दिन अपने गृह सचिव और तीन सहसचिवों के साथ उपस्थित रहे। वे प्रधानमंत्री जो इस सम्मेलन में उपस्थित थे वे थे उत्तर प्रदेश से पण्डित गोविन्द वल्लभ पंत, मद्रास से टी० प्रकाशन, बंबई से बी०सी० खेर, बिहार से श्रीकृष्ण सिन्हा, उड़ीसा से हरे कृष्ण मेहताब, मध्य प्रान्त से पण्डित रवि शंकर शुक्ला, असम से गोपीनाथ बार्दोलोई।

सरदार पटेल

अपने उद्घाटन भाषण में सरदार पटेल ने यह प्रश्न उठाया कि सिविल सेवा व भारत पुलिस सेवा, जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इनमें भर्ती भारत सचिव ने रोक दी थी, क्या उनके स्थान पर केन्द्रीय या प्रान्तीय सेवा होनी चाहिए। उन्होंने 'अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा' की स्थापना में केन्द्रीय सरकार का समर्थन व्यक्त किया तथा उन्होंने बताया कि इससे केन्द्र और प्रान्तों दोनों को ही बहुत लाभ होंगे। इस प्रकार की अखिल भारतीय सेवा केन्द्र और प्रान्तों के मध्य सामन्जस्य में सहायता, प्रशासन स्तर में विशिष्ट एकरूपता और केन्द्रीय प्रशासन को भूस्तर के यथार्थ से जोड़ने में सहायक होगी। वे इस बात पर भी बल देते रहे कि अपनी ओर से प्रान्तीय प्रशासन व्यापक दृष्टिकोण प्राप्त करेगा तथा उच्चतम पदों के लिए सर्वोत्तम (कर्मचारियों को) प्राप्त करेगा। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि इन सेवाओं में संतोष और सुरक्षा की आवश्यकता तथा यह भी कि ये साम्प्रदायिकता और दलीय झुकाव से मुक्त हों।

प्रान्तों का दृष्टिकोण

प्रथम दिन जो भी व्यक्ति बोले उनमें उत्तर प्रदेश, बाम्बे, बिहार, असम, उड़ीसा, मध्य प्रान्त और मद्रास के प्रधानमंत्रियों ने कम या अधिक सहमति से, इस प्रकार की सेवा के निर्माण का समर्थन किया और चाहा कि भारत सचिव का नियंत्रण तत्काल समाप्त कर दिया जाय। असम के प्रधानमंत्री गोपीनाथ बार्दोलोई ने इस सेवा का समर्थन किया लेकिन चाहा कि इस पर प्रान्तीय नियंत्रण पर्याप्त होना चाहिए एवं भूमि–पुत्रों (स्थानीय नवयुवकों) को और अधिक अवसर दिए जाने चाहिए। उत्तर प्रदेश के प्रधानमंत्री पण्डित गोविन्द बल्लभ पंत ने दूसरा दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने तर्क दिया कि केन्द्रीय सरकार केवल भर्ती और प्रशिक्षण के लिए उत्तरदायी हो, वे भारत सचिव के स्थान पर केन्द्र सरकार को मानने से सहमत नहीं थे, और चाहते थे कि सेवा पर प्रान्तों का पूर्ण नियंत्रण हो।

स्मरण रहे, कि वे प्रधानमंत्री जो काँग्रेस के थे, वे अखिल भारतीय सेवा के बारे में अपने पक्ष के आधार पर तीन श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं

1. बी० सी० खेर, रवि शंकर शुक्ला और हरे कृष्ण मेहताब ने स्पष्ट एवं बिना किसी वर्जना के अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा का समर्थन किया था।
2. बार्दोलोई (असम) इन सेवाओं पर प्रान्तों का पर्याप्त नियंत्रण चाहते थे।
3. पंत (उ० प्र०) अखिल भारतीय सेवाओं के पक्ष में थे लेकिन केन्द्र को दो ही कार्य – भर्ती और प्रशिक्षण के देना चाहते थे तथा अन्य दायित्व अनुशासन और नियंत्रण प्रान्तों में ही निहित चाहते थे।

उन प्रान्तों ने, जैसे बंगाल, पंजाब और सिन्ध जिनमें काँग्रेस पार्टी सत्ता में नहीं थी, अखिल भारतीय सेवा में भाग लेने के प्रति अपनी दृढ़ अनिच्छा प्रकट की। लेकिन गैर–भागेदारी को निरपेक्ष एवं पूर्ण घोषित नहीं किया गया। पंजाब के राजस्व मंत्री नवाब सर मुजफ्फर अली काजिलबक्श चाहते थे कि आई० सी० एस० और आई० पी० एस. शीघ्रतातिशीघ्र समाप्त कर दिया जाय लेकिन अपनी सरकार का यह मत भी व्यक्त किया कि इस सेवा का

प्रान्तीकरण होना चाहिए। (सिविल) सेवाओं पर प्रान्तों का पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए, और पूर्ण नियंत्रण के लिए उन्हें अपनी सेवाओं का चयन करने का अधिकार भी होना चाहिए। विचार–विमर्श से जो स्पष्ट हुआ वह था आई० सी० एस० और आई० पी० सेवाओं के सम्बन्ध में भारत सचिव की भूमिका के विरुद्ध एक निश्चय । सम्मेलन ने इस बात पर बल दिया कि उसका नियंत्रण शीघ्रातिशीघ्र समाप्त किया जाय। लेकिन इनके स्थान पर सेवाओं के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए गए उनमें सर्वसम्मति नहीं थी।

प्रस्ताव की स्वीकृति

भारत के लौह पुरुष सरदार पटेल सहमत नहीं हुए और दृढ़ता से अपने मौलिक प्रस्ताव पर अडिग रहे। विचार–विमर्श के समापन में ष्अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा के निर्माण के पक्ष में एक सामान्य सहमति पर जोर देते हुए उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि एक सामान्य योजना बन जाने के बाद वे लोग जो अभी इसके पक्ष में नहीं हैं, उन्हें पक्का विश्वास हो जाएगा कि नियंत्रण सम्बन्धी प्रान्तीय संवेदनाओं का पर्याप्त ध्यान रखा गया है और वे इसमें सम्मिलित हो जायेंगे।

अन्य विचारो की व्याख्या

सम्मेलन में अन्य सम्बन्धित विषयों पर चर्चा की गयी। भर्ती की विधि और प्रकार यह भारतीय सिविल सेवा में व्याप्त नियमों और नियमनों को अपनाने में सहमत थी। गोविन्द बल्लभ पंत के सुझावों को स्वीकार करते हुए इसने प्रस्तावित भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय वैदेशिक सेवा के एक संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा की संस्तुति की। अन्य विषयों पर लिए गए निर्णय, स्पष्ट रूप से, प्रान्तीय संवेदनाओं के प्रति आदरपूर्ण थे और प्रान्तों के लिए पर्याप्त स्वायत्तता भी छोड़ी गयी। कैडर संख्या के निर्धारण के सम्बन्ध में प्रान्तों को निश्चय करना था कि कितने स्थान होंगे जिनके लिए अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों की आवश्यकता होगी। केन्द्र सरकार अपनी आवश्यकता का स्वयं निर्धारण करेगी और प्रान्तों के प्रस्तावों को प्राप्त करने के पश्चात् कैडर विस्तार का निर्धारण भी करेगी। प्रान्तीय सिविल सेवा पदाधिकारियों की प्रोन्नति का कोटा प्रस्तावित सेवा में उच्च पदों का 25 प्रतिशत निर्धारित करने की संस्तुति की गयी। प्रान्तीय सेवा में उच्चतम के चयन के लिए, चयन और नियम निर्माण के लिए प्रान्तों को स्वतंत्र छोड़ दिया गया, लेकिन वे व्यक्ति जो अन्ततरू चयनित होंगे उन्हें संघ लोक सेवा आयोग से अनुकूलता प्रमाणपत्र प्राप्त करना होगा। यह भी सुझाव दिया गया कि अवकाश, पेन्शन और अन्य सेवा–शर्तों के लाभ प्रान्तीय सेवाओं पर लागू होने वाले नियमों के आधार पर निर्धारित किए जाने चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि अधिकारियों का आबंटन प्रान्तों की सलाह से होना था तथा जैसा कि सम्मेलन ने संस्तुति की थी, कि जहाँ तक सम्भव हो, चयनित उम्मीदवारों का आबंटन करने में उन्हें अपने उद्गम वाले प्रान्तों को दिये जाने चाहिए।

सरदार पटेल ने सम्मेलन को कई और महत्वपूर्ण विषयों में संस्तुति हेतु मनवाया। प्रस्तावित अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा के वेतन–दर प्रश्न पर इसका मानना था कि आई० सी० एस० का वेतनमान बहुत ऊँचा है, मानते हुए एक पंचवर्षीय वेतनमान रु. 300–350–400–450–500 की संस्तुति की और इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय (प्रथम) केन्द्रीय वेतन आयोग पर छोड़ दिया जिसकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जा चुकी थी।

प्रान्तों के प्रतिनिधि भी इस बात से सहमत थे कि उन प्रान्तों में भी वेतनमान, जो केन्द्रीय योजना में सम्मिलित नहीं थे, एकरूप होने चाहिए ताकि अगर वे बाद में इसमें सम्मिलित होने का निर्णय लें तो प्रान्तीय सेवाओं के कैडर को अखिल भारतीय सेवा में विलय करने में कठिनाई न हो। दूसरा प्रस्तुत किया गया तर्क, अन्तर–प्रान्तीय प्रतिस्पर्धा को रोकना था।

अन्तिम निर्णय

सरदार वल्लभभाई पटेल ने विचार–विमर्श का समापन, अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा व भारतीय पुलिस सेवा के निर्माण में प्रान्तीय प्रधानमंत्रियों के सामान्य समर्थन पर जोर देकर किया। विचार–विमर्श से यह निष्कर्ष नहीं निकला था लेकिन सरदार इससे चिन्तित नहीं थे। वे इन सेवाओं को चाहते थे और उन्हें ये प्राप्त हुई, यह समस्त केन्द्र की महान विजय थी, और अधिक सत्य रूप में, वल्लभभाई पटेल की व्यक्तिगत विजय । वास्तव में पटेल को अखिल भारतीय सेवाओं का जनक माना जा सकता है। उनका कार्य, शायद अन्तरिम सरकार में मुस्लिम लीग के प्रारम्भ में न सम्मिलित होने से कम दुष्कर हो गया था। मुस्लिम लीग अन्तरिम सरकार में तब सम्मिलित हुई जब प्रान्तीय प्रधानमंत्री सम्मेलन में विचार–विमर्श समाप्त हो चुका था।

इस सम्मेलन के एक सप्ताह पश्चात, केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में एक अवरोध उत्पन्न हुआ। पटेल का स्पष्ट उत्तर था, मैंने प्रान्तीय प्रधानमंत्रियों का सम्मेलन 21 अक्टूबर 1946 को इन सेवाओं (भारतीय सचिव) के स्थान पर प्रबन्ध पर विचार–विमर्श करने के लिए बुलाया था। सम्मेलन में आम सहमति इस उद्देश्य के लिए, नवीन अखिल भारतीय सेवाओं के निर्माण के पक्ष में थीं। इसकी व्यापक व्याख्या प्रान्तों से पूछकर तैयार की जा रही है और जब प्रबन्ध को अन्तिम रूप दिया जायेगा तो उसकी सार्वजनिक घोषणा कर दी जायेगी।

स्वतंत्र भारत में सिविल सेवायें

पटेल समय नहीं खोना चाहते थे और इसलिए इसकी उत्तराधिकारी सेवा, जिसे अब नवीन नाम भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई० ए० एस०) कहा जाता है क्रियाशील है, और इस प्रकार यह एक सम्पन्न तथ्य हो चुकी है।

1946 में आई० ए० एस० का प्रथम बैच सशस्त्र सेना से मुक्त कर्मियों में से भर्ती किया गया और इन्हें अप्रैल 1947 में मैटकाफ हाउस (दिल्ली) प्रशिक्षण संस्थान में प्रशिक्षित किया गया। लोहा गर्म था और पटेल ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वे किसी भी अवस्था में प्रशासन को ठप्प नहीं होने देंगे। 24 अप्रैल 1947 को आई० ए० एस० के प्रथम बैच के प्रशिक्षणार्थियों को सम्बोधित करते हुए पटेल ने कहा कि आई० ए० एस० का गठन विदेशी हाथों से भारतीय हाथों में "सत्ता हस्तान्तरण का स्पष्ट संकेत है। उन्होंने जोर देकर कहा कि आई० सी० एस० के स्थान पर आई० ए० एस० का गठन एक ऐसी अखिल भारतीय सेवा का उद्घाटन है जो पूर्णतः भारतीय पदाधिकारियों द्वारा संचालित और पूर्णतरू भारतीय नियंत्रण के अधीन होगी। और अब इसे स्वतंत्र होना है अतः इसे भूतकालीन परम्पराओं और स्वभावों से बिना प्रभावित हुए, राष्ट्र सेवा की सच्ची भूमिका निभानी होगी। इन्होंने आगे कहा

'वे दिन जब इन सेवाओं के कर्मी स्वामी होते थे वे समाप्त हो गए हैं .... शायद आप इस कहावत के बारे में परिचित होंगे कि भारतीय सिविल सेवा न भारतीय और न सिविल (सभ्य) और न ही इसमें सेवा भावना भरी है .... आपके पूर्ववर्ती अधिकारियों को विदेशी शासकों के अभिकरण के रूप में कार्य करना पड़ता था, और स्वयं अपनी न्याय भावना के विरुद्ध, उन्हें अपनी विदेशी स्वामियों के आदेशों का पालन करना पड़ता था.... एक नागरिक सेवक को किसी भी रूप में राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। और न ही उसे स्वयं को साम्प्रदायिक विवादों में फँसाना चाहिए। इन सभी बातों में नैतिकता के मार्ग से विचलित होने का अर्थ होगा सार्वजनिक सेवा को भ्रष्ट बनाना एवं इसकी श्रेष्ठता को धूमिल करना।

सिविल सेवा विचार की व्याख्या करते हुए पटेल ने कहा, यह बहुत बुरा दिन होगा जब जनता उच्च पदासीन अधिकारियों का सम्मान नहीं करेगी। मंत्री आते हैं और मंत्री जाते हैं, लेकिन प्रशासन की स्थायी मशीन (सिविल सेवा) को श्रेष्ठ एवं दृढ़ होना चाहिए, और उसे जन आदर भी मिलना चाहिए। सिविल सेवा स्थिरता की स्रोत है। स्वतंत्रता के ठीक पश्चात् उन्होंने बातचीत करने के लिए वरिष्ठ सिविल सेवकों को अपने घर पर बुलाया। पटेल के जीवन गाथाकार ने प्राक्कथन में ही वर्णन करते हुए लिखा है कि उन्होंने और उनके सहयोगियों ने वर्षों

राष्ट्र सेवा की ज्वलन्त इच्छा से कार्य किया। पटेल ने उन्हें राष्ट्र सेवा के लिए उसी भाँति अर्पित होने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने इसके बदले में कुछ वचन नहीं दिया।

सरदार पटेल विचार करने एवं सलाह देने में सिविल सेवा की पूर्ण स्वतंत्रता पर विश्वास करते थे। यही एक विधि थी जिसके द्वारा राजनीतिक नेतृत्व को पेशेवर नौकरशाही में सर्वोत्तम प्राप्त हो सकता है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था, मेरे सचिव को मेरे दृष्टिकोण के विरुद्ध टिप्पणी लिखने का अधिकार है। यह स्वतंत्रता मैंने अपने सभी सचिवों को प्रदान की है। मैंने उनसे कहा है, अगर तुम अपनी ईमानदारीपूर्ण सलाह इस भय से नहीं दे पा रहे हो कि वह तुम्हारे मंत्री को अप्रसन्न कर देगीय तब, कृपया आपको पद छोड़ देना चाहिए। मैं दूसरे सचिव को नियुक्त कर लूँगा। मैं कभी भी स्पष्ट एवं भयहीन धारणा से अप्रसन्न नहीं हो सकता। ये लोग यंत्र हैं। उन्हें हटा दो, मुझे, सिवाय अराजकता के, कुछ भी नहीं दिखाई देगा। एक सचिव की बात है, जिससे पटेल ने सलाह माँगी थी। सलाह देने से पहले उसने पटेल से पूछा कि क्या वह (पटेल) ईमानदारीपूर्ण सलाह चाहेंगे। पटेल ने पलटकर पूछा, "क्या सरकार तुम्हें 4000 रु. प्रतिमाह बेईमानीपूर्ण सलाह के लिए देती है? तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम ईमानदारी के साथ सलाह दो और यह मेरे ऊपर निर्भर करता है कि मैं उसे मानूँ या न मानूँ। उनका यह मानना था कि भारत सरकार के सचिवों की स्थिति बहुत ऊँची होती है और जन आकलन में भी उसे उच्चस्तरीय बनाए रखा जाना चाहिए। अन्यथा भी वे नौकरशाही अनुशासन और वरीयताक्रम का बहुत ध्यान रखते थे। उन्होंने एक बार पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री बी० सी० राय को भी इस बात के लिए लताड़ा था कि उन्होंने प्रधानमंत्री के साथ अशोभनीय व्यवहार किया था। उन्होंने लिखा, मुझे इस बात पर बड़ा कष्ट हुआ कि आपने प्रधानमंत्री को इस प्रकार लिखा । अगर यह व्यक्तिगत पत्र होता, या आप उनसे बात कर रहे होते, तो शायद एक वरिष्ठ होने के कारण, यह स्वतंत्रता आपको होती। लेकिन एक औपचारिक संप्रेषण में, एक प्रधानमंत्री के रूप में, मुझे आशा थी कि आपका व्यवहार आदरपूर्ण होगा जैसा कि प्रधानमंत्री के उच्च पद की गरिमा को देखते हुए आवश्यक है तथा स्वयं आपके पद के लिए भी गरिमामय होता।

जब प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने एक सिविल सेवक को मुख्य आयुक्त के प्रान्त अजमेर में हाल के ही साम्प्रदायिक दंगों की जाँच करने के लिए नियुक्त. किया, तो पटेल ने शीर्ष में मुख्य आयुक्त सहित सरकारी मशीन की उपेक्षा करने पर प्रधानमंत्री की आलोचना की। सरदार पटेल, नेहरू जी से यह कहने में नहीं हिचकिचाए कि अगर वह अजमेर जाने में असमर्थ थे तो एक सेवारत सिविल कर्मचारी को भेजने के स्थान पर पटेल को या अन्य किसी मंत्री को भेज दिया होता जिससे मुख्य आयुक्त के मस्तिष्क में कोई भान्ति उत्पन्न नहीं होती। मुख्य आयुक्त, "योग्यतम अधिकारियों में से एक था जिसकी कार्यकुशलता और ईमानदारी पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता था। वास्तव में, पटेल प्रशासनिक अनुशासन और प्रक्रिया की अवहेलना बर्दाश्त नहीं कर सकते थे।

जवाहरलाल नेहरू के विपरीत, पटेल सिविल सेवा का आदर करते थे। एच०वी०आर० आयंगर, जो भारतीय सिविल सेवा के माने हुए अधिकारी और प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव थे, कहा है कि जवाहरलाल नेहरू सिविल सेवकों के बारे में यह नहीं सोचते थे कि वे विशेष प्रकार के माने हुए व्यक्ति हैं और षजिनके साथ उनके लिए निहरू) प्रधानमंत्री के समक्ष आने वाली समस्याओं के पक्ष–विपक्ष में विचार–विमर्श करना उचित था।

यह पटेल के प्रशासनिक मस्तिष्क की एक झलक प्रस्तुत करता है। पटेल सम्पूर्ण नीति प्रस्तुत करते थे और इसका क्रियान्वयन सिविल सेवकों पर छोड़ देते थे। वह सावधानी से सिविल सेवकों का चयन करते थे लेकिन उसके पश्चात् वह उन पर पूर्ण विश्वास करते थे। यह आयंगर कहते हैं सिविल सेवकों को अपनी क्षमता की सीमा तक उनके लिए कार्य करने के लिए अर्पित कर देता था तथा जहाँ तक मानवीय रूप में सम्भव हो उन्हें हताश नहीं होने देता था। पटेल ने सिविल सेवा में विश्वास उत्प्रेरित किया और उसे अनुभव कराया कि वह उनके (पटेल) साथ प्रशासन कार्य में भागीदार हैं, आदेश प्राप्त करने वाला मात्र लिपिक नहीं।

पटेल ने एक बार सिविल सेवा के सम्बन्ध में अपने विचार अपने गृह सचिव, एच०वी०आर० आयंगर के समक्ष स्पष्ट किए थे। "यह बहुत बुरा दिन होगा अगर जनता उच्च पदासीन अधिकारियों को आदर की दृष्टि से नहीं देखें। मंत्री आते हैं मंत्री जाते हैं लेकिन स्थायी सिविल सेवा (सरकारी तंत्र) को अच्छा और दृढ़ तथा जनता के लिए आदरणीय होना चाहिए।

एक अन्य अवसर पर पटेल ने कहा है कि लोग हमसे एक स्वच्छ और कार्यकुशल प्रशासन की उम्मीद रखते हैं जो उनकी सुरक्षा कर सके। सरदार पटेल भारतीय समाज की कमजोरीयों को अच्छी तरह जानते थे इसीलिए इन कमजोरीयों को दूर करने के लिए संस्थात्मक उपचार की बात करते है जिससे विभाजित देश के एकीकरण को बल मिल सके। उनके अनुसार उपर्युक्त कार्य सिविल सेवा के द्वारा किया जा सकता है। जब दिसम्बर 1949 मे नेहरू के द्वारा अजमेर में एक सिविल सेवक की नियुक्ति की गई तो पटेल ने प्रशासनिक अनुशासन का प्रयोग न होने कारण इस बात का विरोध भी किया था जिससे नाराज होकर नेहरू ने पटेल को पत्र भी लिखा तथा कहा कि प्रधानमंत्री की हैसियत से वे किसी मामले की जानकारी हेतू ऐसा कर रहें है और यदि वे ऐसा नही कर सकते तो ये उनकी स्वतंत्रता का हनन होगा और उन्होंने इस्तीफा देन तक की बात कही। इसका जवाब देते हुए पटेल ने लिखा कि नेहरू की स्वतंत्रता का हनन करने कि उनकी कोई इच्छा नही है और न ही मै आपकों शर्मिंदा करना चाहता हूँ। परन्तु यह जिम्मेदारी, अधिकार और क्रिया के क्षेत्र का एक मौलिक प्रश्न है। पटेल के द्वारा नेहरू के इस्तीफे की बात को अस्वीकार कर दिया गया तथा लिखा कि क्या नेहरू मुझे एक अप्रभावशाली सहयोगी के रूप मे चाहते हैं।

पटेल बताते है कि प्रधानमंत्री की नीतियों को अपनाने और लागू करने के लिए सलाह देने का अधिकार है परन्तु उसे किसी मंत्रालय के बारे मे कार्य करते समय सम्बन्धित मंत्री से भी सलाह लेनी चाहिए जिससे प्रधानमंत्री न केवल प्रशासन प्रभावशाली प्रमुख होगा बल्कि लोकतांत्रिक सिद्धांतो का पालन भी होगा।

निष्कर्षत सरदार पटेल, प्लेटो और अरस्तु की तरह प्रशासनिक दार्शनिक नही थे। वह तो एक प्रशासक थे जिसकी जड़ें जमीन से जुड़ी हुई थी। वह एक समेनकर्ता थे तथा प्रयोगों और अनुभवों पर आधारित थे। मेन हू रूल्ड इंडियां के लेखक फिलिप मेशन पटेल को एक प्राकृतिक प्रशासक कहते है जिन्हें किसी प्रकार के अनुभव की आवश्यकता नही थी। एच वी0 लेंगर के अनुसार पटेल की प्रशासनिक क्षमता के दो कारण थे पहला वह निर्णय लेने से पहले सभी बातों को सुनते थे। दुसरा उनमें अस्वीकार योग्य बातों को नही कहने की क्षमता थी।

अध्याय – 5

स्वामी विवेकानन्द

(SWAMI VIVEKANAND)

परिचय–स्वामी विवेकानन्द आधुनिक भारत के एक महानतम निर्माता थे, और भारत द्वारा विदेशों को भेजे गए आध्यात्मिक दूतों में सर्वाधिक विख्यात थे। उनका विश्वास था कि 'धर्म भारत के राष्ट्रीय जीवन के समग्र संगीत का मुख्य स्वर एवं केन्द्र है। भारत की विशिष्ट प्रवृत्ति, विश्व के जीवन में, सदैव उसका विशिष्ट उद्देश्य तथा धर्म रहा है। 'राजनीतिक महानता अथवा सैनिक शक्ति कभी भी हमारी जाति का उद्देश्य नहीं रहा; यह हमारा उद्देश्य न कभी था, और न कभी होगा। हमारा एक लक्ष्य है मानवता की सम्पूर्ण आध्यात्मिक शक्ति को सुरक्षित रखना। अपने मद्रास (अब चेन्नई) भाषण में उन्होंने यह धारणा प्रकट की, कि यदि किसी आकस्मिक आपदा के कारण भारत ने धर्म का परित्याग करके राजनीतिक अथवा सामाजिक सुधार को ही अपने जीवन का केन्द्र बना लिया, तब उसका अन्त हो जायेगा। कोलम्बो से लेकर अलमोड़ा तक उन्होंने अपने श्रोताओं से यही कहा कि, "भारत की प्राणप्रद शक्ति तथा अमर आत्मा धर्म में है'।

स्वामी विवेकानन्द कलकत्ता (अब कोलकाता) विश्वविद्यालय के एक प्रतिभाशाली स्नातक थे और स्पेंसर तथा मिल, कॉन्ट तथा हीगल और फिक्टे के दार्शनिक विचारों से भलीभाँति अवगत थे। उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में कई वर्ष व्यतीत किये थे और वह यूरोप के अन्य देशों में भी गए थे। उन्होंने पश्चिम की सभ्यता में बहुत–सी मूल्यवान वस्तुएँ देखीं, जो स्वयं उनके अपने देश में नहीं थीं। अतएव उन्होंने अपने देशवासियों को उन्हें – ग्रहण करने का उपदेश दिया। स्वामी विवेकानन्द के मतानुसार, यदि भारत पश्चिम को बहुत कुछ सिखा सकता है, तब पश्चिम भी भारत को बहुत कुछ सिखा सकता है। उन्होंने इस सत्य – पर भी बल दिया कि जो राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय सजीवता को खो देता है, वह नष्ट हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द के मतानुसार भारत की जीवन शक्ति उसके धर्म में है। अतएव उन्होंने हिन्दू आध्यात्मिकता तथा पाश्चात्य विज्ञान का और वेदांत के विचारों तथा पश्चिम की सामाजिक व्यवस्था के एक प्रभावी समन्वय का वास्तविक प्रयास किया।

प्रारम्भिक जीवन– स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, सन् 1863 को, मकर संक्रांति के दिन बंगाल में गंगा की विशेष पूजा पर कलकत्ता (अब कोलकाता) के एक महान कुलीनतंत्री कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पिता कलकत्ता (अब कोलकाता) हाईकोर्ट में वकालत करते थे और माता एक सुशिक्षित वीरांगना थीं, जिनका वीरभाव हिन्दू महाकाव्यों से पोषित हुआ था। विवेकानन्द ने अपनी माता के भक्ति–भाव, आत्म संयम तथा उत्कृष्ट चरित्र की भूरि–भूरि प्रशंसा की है और कहा है कि वह उनके जीवन तथा कर्म की प्रेरणा थीं। उनके पितामह, जो कि एक धनाढ्य तथा सुसंस्कृत व्यक्ति थे, 25 वर्ष की छोटी–सी आयु में ही संसार से निवृत्त होकर संन्यासी हो गए थे।

एक विद्यार्थी के रूप में स्वामी विवेकानन्द ने न केवल एक विलक्षण स्मरणशक्ति तथा एक असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया, अपितु पीड़ितों के प्रति एक तीव्र संवेदना तथा पवित्रता और आध्यात्मिकता के लिए एक उत्कृष्ट प्रेम का भी प्रदर्शन किया। एक विद्यार्थी के रूप में उनकी योग्यता का वर्णन, कॉलेज के प्रधानाचार्य श्री हेस्टी के शब्दों में किया जा सकता है। 'नरेन्द्रनाथ वास्तव में असाधारण प्रतिभाशाली है। मैंने दूर–दूर तक यात्रा की है किन्तु मैंने ऐसी बुद्धि वाला लड़का अभी तक कहीं नहीं देखा है, जर्मन विश्व–विद्यालयों में दर्शनशास्त्र के विद्यार्थियों में भी मुझे ऐसा नहीं मिला। वह निश्चित रूप से ही ख्याति प्राप्त करेगा।' दीन तथा पीड़ित के प्रति उनके प्रेम के विषय में

इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनके पास जो कुछ भी होता था वह उसी को साधुओं तथा भिक्षुओं को दे दिया करते थे। उनकी इस प्रवृत्ति को संयत रखना उनकी माता के लिए एक समस्या थी। उनकी आध्यात्मिक उत्कंठा के विषय में यह कहा जा सकता है कि वह विभिन्न धर्मों के शिक्षकों के पास जाते थे और उनसे यह पूछते थे कि क्या आपने परमात्मा का दर्शन किया है। दुर्भाग्यवश, श्री रामकृष्ण परमहंस से उनकी भेंट होने से पूर्व, किसी ने भी उनको इस प्रश्न का संतोषजनक सकारात्मक उत्तर नहीं दिया। श्री रामकृष्ण के साथ उनकी भेंट अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई; उसने न केवल नरेन्द्रनाथ के समग्र जीवन की धारा को बदल दिया, अपितु हिन्दू धर्म के इतिहास में एक नवीन अध्याय भी खोल दिया।

नरेन्द्रनाथ की प्रतिभा बहुमुखी थी और उसने प्रायः अपने सभी गुणों को विकसित किया था। उनका शरीर बलिष्ठ था; वह एक अच्छा खिलाड़ी तथा मुक्केबाज था और तैरने तथा घुड़सवारी में बहुत कुशल था। उनका स्वर बहुत मधुर था और वह बहुत अच्छा गा सकता था। श्री रामकृष्ण ने नरेन्द्र से जो पहला कार्य करने को कहा वह एक गाना सुनाना था और वह उसके गीतों से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वह कुछ देर तक ईश्वर के ध्यान में मग्न हो गए। नरेन्द्रनाथ दार्शनिक वादविवाद में बहुत रुचि लेता था और वह किसी भी बात को केवल इसीलिए ही स्वीकार नहीं कर लेता था कि उसे दूसरे व्यक्ति मानते थे। नरेन्द्रनाथ ने श्री रामकृष्ण को एकदम ही अपना गुरु स्वीकार नहीं कर लिया; यद्यपि वह उनकी ओर आकृष्ट अवश्य हो गया था, तथापि वह उनके प्रभुत्व के समक्ष एकदम नहीं झुका। उसकी बुद्धि को उसके हृदय के प्रति अविश्वास था। वह अपनी स्वाधीनता को सुरक्षित रखना चाहता था। वह अपने गुरु की कोई भी ऐसी बात स्वीकार नहीं करना चाहता था, जो कि उसकी बुद्धि को मान्य न हो। नरेन्द्रनाथ के लिए उस बौद्धिक धरातल से उस आध्यात्मिक स्तर पर आ जाना जिस पर कि उसका गुरु रहता था, कोई सुगम बात न थी। युवा नरेन्द्र को श्री रामकृष्ण को अपना गुरु मान लेने और आध्यात्मिक प्रकाश प्राप्त करने तथा गुरू का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी समझा जाने से पूर्व कोई पाँच या छः वर्षों तक उनकी शिष्यता करनी पड़ी। नरेन्द्रनाथ को वेदांत तथा पाश्चात्य दर्शनशास्त्र का अच्छा ज्ञान था और वह दर्शनशास्त्र का एक प्रभावशाली प्रोफेसर बन सकता था; परन्तु स्वामी विवेकानन्द बनने के लिए उनके लिए वह आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करना आवश्यक था, जिसका कि वेदांत एक बौद्धिक विवेचन है। उस आध्यात्मिक अनुभव को उसने उस गुरु से प्राप्त किया जिसकी न केवल स्वयं की महान् आध्यात्मिक अनुभूति थी, अपितु जो अपनी आध्यात्मिकता को स्पर्श द्वारा दूसरों के भीतर भी संचारित कर सकता था। इस प्रकार का अन्तिम संचरण श्री रामकृष्ण के शरीरान्त से तीन या चार दिन पूर्व अगस्त सन् 1886 में हुआ, जब उन्होंने नरेन्द्र को अपने पास बुलाया और उसके साथ अकेला छोड़ दिये जाने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य को प्रेमभरी दृष्टि से निहारा और आनन्दातिरेक से समाधिस्थ हो गए। इस तीव्र आध्यात्मिकता के वातावरण ने नरेन्द्र को चारों ओर से आच्छादित कर दिया। जब गुरु पुनः सामान्य चेतना में आये थे, तब उनकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उन्होंने नरेन्द्र से कहा–

–'आज मैंने तुमको अपना सर्वस्व दे दिया है और अब मैं एक कंगाल फकीर हूँ, मेरे पास अब कुछ नहीं है। इस शक्ति के द्वारा तुम संसार का महान कल्याण करोगे और जब तक यह उद्देश्य पूरा नहीं होगा, तब तक तुम लौटकर नहीं आओगे।'

रोमेन रौलां का कहना है कि उसी क्षण से गुरु की समस्त शक्तियाँ नरेन्द्रनाथ को प्राप्त हो गईं एवं गुरु तथा शिष्य एकाकार हो गए।

यात्राएँ–गुरु के शरीरांत के उपरांत नरेन्द्रनाथ का अविलम्ब कार्य अपने समस्त सह–शिष्यों को संगठित करना तथा उनको गुरु के संदेश का प्रसार करने के लिए तैयार करना था। नरेन्द्र के उत्साह से प्रेरित होकर और उसके नेतृत्व में उन्होंने संसार का परित्याग कर दिया। उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया और दक्षिणेश्वर तथा कलकत्ता के मध्य बारानगर में एक छोटा–सा मठ स्थापित किया। बारानगर का मठ उसके गुरु भाइयों की आध्यात्मिक–शिक्षा की एक पाठशाला बन गया। किन्तु नरेन्द्रनाथ में एक भ्रमणशील साधु बनने की भावना उत्पन्न

हुई और उसने सन् 1888 में एक साथी के साथ अकस्मात बारानगर छोड़ दिया। जब कभी उसके साथी उसकी उपस्थिति आवश्यक समझते थे, तब यदा–कदा मठ में आ जाता था। परन्तु सन् 1891 में उसकी पलायन की उत्कण्ठा अत्यधिक तीव्र हो उठी। वह बिना किसी साथ के, बिना एक नाम से तथा बिना हाथ में एक दण्ड और कमण्डल के एक अज्ञात भिक्षुक के रूप में बाहर निकल पड़े और वर्षों तक भारत की गहनता में खोये रहे।' सन् 1888 से 1893 ई० तक, लगभग पाँच वर्ष तक वह देश भर में घूमें एवं उन्हे अधिकतर पैदल चलना पड़ा, और बहुधा भूखा रहना पड़ा, और कभी–कभी तो उनका जीवन ही गम्भीर संकट में पड़ गया। उन्हे भारत का वास्तविक दर्शन करने का अवसर मिला। उन्होंने एक ओर तो अपने करोड़ों देशवासियों को अपनी झोपड़ियों में पड़े हुए दरिद्रता की चक्की में पिसते हुए देखा, और दूसरी ओर, धनियों को अपने प्रासादों में विलासिता और आनबान का जीवन व्यतीत करते हुए देखा। उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि एक सच्चे धार्मिक व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य दरिद्रों की सेवा करना तथा उनको ऊँचा उठाना है। दूसरी बात जो उन्होंने अपने भ्रमण में अनुभव की, वह थी जातियों, सम्प्रदायों, प्रथाओं और परम्पराओं की अत्यधिक विविधता के होते हुए भी भारत की एकता।

उत्तर से दक्षिण तक सम्पूर्ण देश की पद यात्रा करके एवं जनसाधारण की दयनीय स्थिति देखने के उपरान्त स्वामी विवेकानन्द कन्याकुमारी पहुँचे। कन्याकुमारी देवी के मन्दिर से बाहर आकर और समुद्रतट से तैरकर लगभग दो सौ गज की दूरी पर, चट्टान पर बैठकर उन्होंने स्वयं से प्रश्न किया : मेरा क्या कर्तव्य है ? एक संन्यासी के रूप में उन्होंने स्वयं को ईश्वर की सेवा में अर्पित कर दिया था। उन्होंने यह अनुभव किया, कि वे जिस ईश्वर की सेवा करना चाहते थे, उसका साकार रूप मानव जाति है। अतः उनकी ईश्वर–सेवा भारत की मानवता से प्रारम्भ होनी चाहिये। स्वामीजी के हृदय से चीत्कार उठी : 'यदि मैं उस परमात्मा की जिसमें कि मैं विश्वास करता हूँ, जो समस्त आत्माओं का योग है, उपासना कर सकूँ, और सबसे बढ़कर, उस परमात्मा की जो समस्त जातियों के दुष्टजन, पीड़ितजन तथा दरिद्रजन में साकार हो उठा है, उपासना कर सकू, तब मैं बार–बार जन्म लेना चाहूँगा।'

'भारत के पुनरुत्थान हेतु कार्य करने वालों को स्वार्थपरता, द्वेष, लोभ तथा सत्ता की भूख, का परित्याग कर देना चाहिये और दरिद्र, निरक्षर तथा रोगियों की सेवा में स्वयं को अर्पित कर देना चाहिय; ये सभी परमात्मा के साकार रूप हैं।'

स्वामी विवेकानन्द ने भारत के ऐसे असंख्य साधुओं के सम्बन्ध में विचार किया जो कोई रचनात्मक कार्य नहीं करते। अच्छा होता, यदि उनमें एक नवीन भावना का संचार किया जा सकता, जो उन्हें भारत के दरिद्र तथा निरक्षर जनसाधारण की सेवा करने हेतु प्रेरित कर देती। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु संन्यासियों की शक्ति का उपयोग करने हेतु धन की बहुत अधिक मात्रा अपेक्षित थी। स्वामी जी स्वयं सर्वथा निर्धन भिक्षुक थे, और अपने स्वार्थी एवं समृद्ध देशवासियों से अधिक आशा नहीं रख सकते थे। अतः उन्होंने भारत के दरिद्र जनगण की ओर से समग्र संसार से धन माँगने का निश्चय किया, धनी तथा समृद्ध अमेरिका का चित्र उनकी आँखों के समक्ष आ गया। परन्तु वे इतने आत्म–अभिमानी थे कि वे एक भिक्षुक के रूप में सहायता की भीख नहीं माँग सकते थे। उनके अनेक मित्रों ने उनसे अमेरिका जाने और वहाँ शिकागो में होने वाले धर्म–महासम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करने का आग्रह किया। उन्हें यह विचार अच्छा लगा। उन्होंने सोचा कि वे अमेरिकावासियों को भारत का प्राचीन ज्ञान दे सकते थे और उसके बदले में वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान वहाँ से भारत ला सकते थे। इस प्रकार उन्होने 1893 ई0 में अमेरिका की यात्रा की तथा शिकागो के धर्म–महासम्मेलन में हिस्सा लिया।

नेतृत्व तथा संगठन निर्माण :– स्वामी विवेकानन्द के नेतृत्व गुण की जानकारी 1895 मे लन्दन में घटित एक घटना से पता चलती है। उस समय वे लन्दन में स्वामी श्रद्वानन्द के साथ एक अभिभाषण देने पहुँचे थे परन्तु जब स्वामी विवेकानन्द अपने अभिभाषण के लिए खड़े हुए तो उन्होने घोषणा की कि उनके स्थान पर स्वामी श्रद्वानन्द बोलेंगे। थोड़े आश्चर्य के बाद स्वामी श्रद्वानन्द ने एक अच्छा अभिभाषण दिया और स्वामी विवेकानन्द ने उस दिन महसूस किया की सभी श्रद्वानन्द के आत्म विश्वास को जगाने के लिए थोड़े सहारे की जरूरत है। यह घटना स्वामी

विवेकानन्द के नेतृत्व तथा प्रबन्धन शैली की जानकारी प्रदान करती है। साथ ही यह घटना बताती है कि विवेकानन्द जी केवल आध्यात्मिक नेता नहीं थे बल्कि वे एक व्यवहारिक व्यक्ति थे जो केवल सेवा आधारित नेतृत्व में विश्वास नही करते थे बल्कि अपने आस–पास रहने वाले लोगो का सशक्तिकरण करते थे। अपने गुरू भाइयों तथा अनुयायीओं के साथ विवेकानन्द का सम्बन्ध पिग्मेलियन प्रभाव जैसा था। जे. स्टर्लिंग लिविंगस्टन अनुसार पिग्मेलियन प्रभाग एक अवधारणा एक घटना और यहां तक कि एक प्रतिमान है जो मौटे तौर पर सुझाव देता है कि एक व्यक्ति जिस उम्मीद से निर्माण करता है वह प्राप्तकर्ता के व्यवहार को इस हद तक प्रभावित करता है वह प्रारम्भिक अपेक्षा पर प्रतिक्रिया करता है। स्वामी विवेकानन्द अपने अनुयायीओ से बहुत उम्मीद रखते थे तथा उनके साथ स्पष्ट संवाद तथा संचार रखते जिससे अनुयायीओ का प्रदर्शन काफी अच्छा होता था और इसे ही वे नेतृत्व मानते थे। स्वामी विवेकानन्द अनुसार नेता को निरन्तर कोशिश करनी चाहिए कि वह अपने आस–पास के लोगों को आत्म निर्भर बनाए। स्वामी विवेकानन्द जी आदेश और नियन्त्रण के स्थान पर सशक्तिकरण तथा सुविधा के दर्शन को अपनाने की बात करते हैं और इस प्रक्रिया में अधिनस्थों पर विश्वास महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्वामी विवेकानन्द अनुसार यदि नेता अपने अधिनस्थों से अच्छा कार्य चाहता है तो उसे अधीनस्थों और उनकी योग्यता पर पूर्ण विश्वास करना होगा। स्वामी जी अपने आस–पास के लोगो को उत्साहित किस प्रकार रखते थे इसकी जानकारी हमें 1897 ई. में स्वामी शुद्वानन्द को लिखे एक पत्र से मिलती है जिसमें वे कहते हैं कि तुम हमेशा याद रखना कि मुझे अपने गुरू भाइयों से ज्यादा उम्मीद अपने अनुयायीओ से हैं और मैं चाहता हूँ कि तुम मे से प्रत्येक मुझसें सौ गुणा ज्यादा महान बने। यदि तुम किसी कार्य के प्रति आज्ञाकारिता, तत्परता तथा प्यार (तीन बातें) रखोगे तो तुम कभी असफल नही होगे।

स्वामी विवेकानन्द लोगो को उत्साहित और सशक्त करने के लिए कहते थे कि उठो, जागो और तब तक मत रूको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए। रामकृष्ण मिशन और रामकृष्ण मठ की स्थापना के बारे में स्वामी विवेकानन्द कहते है कि यह संस्थान केवल आध्यात्मिक ज्ञान के लिए नहीं है बल्कि ये लोगो के कल्याण को सुनिश्चित करने वाले केन्द्र हैं। इन संस्थानो का उद्देश्य– आत्मनो मोक्षार्थ जगद् हिताय च (अपने मोक्ष और संसार के हित के लिए) संगठन निर्माता के रूप में स्वामी विवेकानन्द बड़े दृष्टिकोण तथा निरन्तर कार्य पर बल देते हैं। वे संगठन में नियमों तथा मूल्य प्रणाली पर बल देने की बात करते है तथा सभी सहयोगी इन नियमों तथा मूल्यों के संचार को सूनिश्चित करते हैं। वह लोगो को प्रेरित करते हुए कहते हैं कि उन्हें न केवल गरीबी और दुखों से बाहर निकलने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए बल्कि अपने आप को सार्थक सामाजिक कार्यो में संलग्न रखना चाहिए। इस प्रकार स्वामी जी प्रशिक्षक, दूरदर्शी, व्यवहारात्मक संगठन विशेषज्ञ तथा चमत्कारिक प्रणेता थे। जान मैक्सवेल ईसाई पादरी तथा नेतृत्व विशेषज्ञ कहते हैं कि यदि व्यक्ति स्वयं का विकास करता है तो उसे व्यक्तिगत सफलता मिलती है, यदि आप एक टीम का विकास करते है तो इससे संगठन का विकास होता है और यदि आप नेतृत्व का विकास करते है तो संगठन तीव्र वृद्वि प्राप्त करता है और स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मठ तथा मिशन ने नेतृत्व विकास किया। स्वामी विवेकानन्द ने अपने संगठन को स्वयं पर अधिक निर्भर नही रखा। इसीलिए उन्होने अपने लिए कभी कोई औपचारिक कार्यालय नही बनाया। स्वामी जी ने अपनी भूमिका एक परामर्शदाता, मार्गदर्शक तथा नेताओं को प्रशिक्षित करने वाली रखी। स्वामी विवेकानन्द अपने पीछे एक ऐसी विरासत छोड़कर गए है जिसके संगठन पर न केवल कोई राष्ट्र गौरवन्वित होता है बल्कि उसकी पिढ़ियाँ युवाओ को स्वामी जी के दृष्टिकोण और संदेश में विश्वास करने और प्रसार करने के लिए प्रेरित करती है। साथ ही उनकी विरासत एक अच्छे राष्ट्र और अच्छे संसार के निर्माण का स्वप्न देखती है।

आधुनिक प्रबन्धन तथा स्वामी विवेकानन्द :– स्वामी विवेकानन्द हमेशा विपतियों से सीखने की बात करते थे और अनुभव को प्रायः समय से जोड़ते थे। स्वामी श्रद्वानन्द कहते हैं कि उनका बुरा समय समाप्त होने से पहले नौकरी की तलाश में भूखे पेट व नंगे पैर, चिलचिलाती दोपहर की धुप में एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय में घुम

रहा था तथा दूर्भाग्य से उनके एक या दो मित्र उनसे सहानुभूति रखते थे परन्तु उनके लिए दरवाजे हमेशा बन्द रहे। इसी समय स्वामी श्रद्वानन्द की मुलाकात स्वामी विवेकानन्द से हुई और पहली बार उन्हें निस्वार्थ सहानुभूति मिली और स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा कि संसार में कमजोर गरीब और दीन–हीन के लिए कोई जगह नही। स्वामी विवेकानन्द की विरासत अनुसार गरीब और दलित लोगों को बुरे अनुभव जन्म से ही मिलते हैं और इनके आधार पर वे अपने भविष्य की क्रियाओ तथा सोच को आकार प्रदान कर सकते है। आधुनिक प्रबन्ध भी स्वयं से बहुत कुछ सीख सकता है और संस्थानों में उत्पन्न होने वाली बहुत सी समस्याओं का समाधान व्यावहारिक जीवन के आधार पर किया जा सकता है। स्वामी विवेकानन्द वर्णित करते है कि संस्थानों में केवल चतुराई के साथ कार्य करके प्रबन्धन की गुणवता को नही सुधारा जा सकता बल्कि इसके लिए प्रबन्धन को बड़े स्तर पर सोचना होगा तथा गैर–मौद्रिक उपागम के साथ परोपकारी विचारों को अपनाना होगा। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द भी सामाजिक–मनोवैज्ञानिक उपगम को अपनाने की बात करते है।

स्वामी विवेकानन्द और वैश्वीकरण :– वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें क्रियाओं को सार्वभौमिक पैमाने के आधार पर किया जाता है। आधुनिक युग में ये भौतिक पैमाने विभिन्न देशों के द्वारा खुले तौर पर अपनाए जाते है और कभी–कभी ये पैमाने पार–संस्कृतियों में विरोध पैदा करते हैं। दूसरे शब्दों में वैश्वीकरण वाणिज्य, निवेश, संचार तथा विचारों के क्षेत्र में विभिन्न देशो को अन्तनिर्भर बनाते हैं। वैश्वीकरण के माध्यम से क्षेत्रीय संस्कृति के स्थान पर वैश्विक संस्कृति को अपनाने की बात कही जाती है। स्वामी विवेकानन्द का वैश्वीकरण यह है कि इसके द्वारा पूर्व का समाज, पश्चिमी समाज से जो आर्थिक समृद्व है तकनीकी विकास प्राप्त कर सकता है तथा पश्चिमी समाज भारत से मन तथा समाज की शांति जैसे गुणों को हासिल कर सकता है। वैश्वीकरण की यह प्रक्रिया विश्व समाज में संतुलन कायम कर सकती है। स्वामी विवेकानन्द अनुसार वैश्वीकरण की प्रक्रिया मतभेदों और अर्न्तविरोधी की प्रक्रिया नही बल्कि यह आपसी स्वीकृति की वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सभी समाजों को समृद्व बनाया जा सकता है। स्वामी विवेकानन्द चाहते है कि पश्चिम की औद्योगिकरण, शहरीकरण और आर्थिक विकास की ताकत तथा पूर्व का अध्यात्मवाद तथा मानवता मिलकर विश्व में एक पूर्ण मानव सभ्यता का विकास करें।

मूल्यांकन :– स्वामी विवेकानन्द न केवल एक महान अध्यात्मिक व्यक्ति हुए बल्कि उनके नेतृत्व सम्बन्धी, प्रबन्धन सम्बन्धी तथा वैश्वीकरण से सम्बन्धित विचार लोक प्रशासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का कार्य कर सकते है और लोक प्रशासन में उनके विचारों को अपनाकर जनता हितैषी तथा मानव कल्याण के कार्यों का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

अध्याय – 6

पाल एच० एपल्बी

(PAUL H. APPLEBY)

पाल एच. एपल्बी (1891–1963) को निःसन्देह बीसवीं शताब्दी का प्रमुखतम प्रशासनिक चिन्तक माना जा सकता है। अपने चिन्तन में नितान्त मौलिक, उन्हें प्रशासन का प्लेटो कहा जा सकता है। पाल एच. एपल्बी ने पाँच पुस्तकें, दो प्रतिवेदन और पच्चीस से अधिक लेख लिखे। **महत्वपूर्ण प्रकाशनः–**

- बिग डेमोक्रेसी, 1945
- पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, 1949
- मोरेलिटी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन इन डेमोक्रेटिक गवर्नमेंट, 1952
- पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन फार ए वेलफेयर स्टेट, 1961
- सिटिजन्स एज सौवरिन्स, 1962
- पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया – रिपोर्ट ऑफ ए सर्वे, 1953
- रिइक्जामिनेशन ऑफ इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम, 1956

एपल्बी का भारत में तो विशेष स्थान है ही, उन्हें देश की स्वतंत्रता के प्रथम दशक में भारत सरकार के समक्ष दो श्रेष्ठ प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए प्रेम से याद किया जाता है। वह इस देश में पहली बार 1951 में आए, और इसके बाद तो वह करीब–करीब नियमित रूप से आने वाले व्यक्ति थे। भारत के साथ विशिष्ट सम्बन्धों के अतिरिक्त, एपल्बी आकर्षक मौलिक प्रशासनिक चिन्तक हैं जो एक पाठक को सता सकते थे तथा आघात भी पहुंचा सकते थे एवं उसे विशेष ध्यान देने के लिए मजबूर कर सकते थे। एपल्बी में बासीपन और नीरसता तो है नहीं – वह गहन रूप से मौलिक है। इन बातों में अमरीकी लोक प्रशासन में उनके समान दूसरा कोई विचारक नहीं है।

पाल एपल्बी की सरकारी सेवा में लम्बी और सम्माननीय जीवनवृत्ति रही है। वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर सरकारी सेवा में रहे। उनकी प्रारम्भिक जीवनवृत्ति पत्रकारिता थी, बाद में वह मैक्सवेल स्कूल ऑफ सिटिजनशिप एण्ड पब्लिक एफेयर्स ऑफ सिराक्यूज विश्वविद्यालय के अध्यक्ष बन गए। ऐसे विभिन्न क्षेत्रों की निपुणता व प्रजातंत्र की चुनौतियों की समस्यायें, सार्वजनिक नीति और लोक प्रशासन का परीक्षण करने के लिए वह अद्वितीय रूप से योग्य थे।

यद्यपि एपल्बी प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं लेकिन साथ ही साथ वह प्रशासन में नागरिकों की भागेदारी की सीमाओं से भी भिज्ञ हैं। संलग्न नागरिकों की संख्या बहुत अधिक है, और समय निर्णय लेने के लिए हमारे ऊपर बहुत अधिक दबाब डालता है।

पाल एपल्बी अपनी पुस्तक बिग डेमोक्रेसी (Big Democracy) जो 1945 में पहली बार प्रकाशित हुई थी, से प्रसिद्धि में आए। प्रजातंत्र का क्षेत्र सदैव विवादास्पद रचनाओं से भरा रहा है, यह और भी अधिक भरा था जब चालीसवें दशक के मध्य में यह रचना प्रकाशित हुई थी। इसके लिए सरकार को अमरीकी जनता की सबसे बड़ी व सरल संसाधन को सकारात्मक रूप से मानने के लिए अदम्य साहस, स्पष्टता और स्वप्न की आवश्यकता थी।

बिग डेमोक्रेसी एपल्बी की न तो प्रशासनिक जीवनगाथा है और न यह इसके लेखक के जनप्रिय व्यक्तियों के साथ सम्बन्धों का ही विवरण है। इसके विपरीत, यह एपल्बी के वाशिंगटन में एक नौकरशाह के रूप में बारह वर्षों तक के अनुभव के आधार पर शासन दृश्य का विश्लेषण है। एपल्बी ने अपने अनुभवों पर चिन्तन किया और सोच समझकर विश्लेषणात्मक और दार्शनिक स्वर में अपनी प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत किया।

अगर 1940 का दशक प्रशासनिक प्रबन्ध पर राष्ट्रपति की समिति के (प्रसिद्ध ब्राउनस्लो प्रतिवेदन, 1938), और गुलिक–उर्विक के प्रशासन विज्ञान पर पत्र (1937) के वर्चस्व के वर्ष थे तो 1950 का दशक पाल एपल्बी की पुस्तक पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन (1940) के प्रभाव के वर्ष थे। एपल्बी स्वभाव से विनम्र इन्सान थे लेकिन उनके अवलोकन दृढ़, मौलिक एवं स्पष्ट होते थे।

पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन में मुख्य बहाव लोक प्रशासन के राजनीतिक चरित्र की ओर है। सरकार और अन्य संगठित उद्यमों के मध्य सबसे बड़ा अन्तर इसके राजनीतिक चरित्र में ही पाया जा सकता है। इसी प्रकार लोक प्रशासन और व्यक्तिगत प्रशासन के मध्य बड़ा अन्तर भी लोक प्रशासन के राजनीतिक चरित्र के कारण ही है। नौकरशाही शक्ति पर नियंत्रण या अवरोध के रूप में एपल्बी उच्च नैतिक स्तर पर बल देते हैं और कहते हैं कि प्रशासनिक नैतिकता प्रजातंत्र की स्वीकारोक्ति है। एक नैतिक रूप से श्रेष्ठ प्रशासक की विशेषताओं का एपल्बी ने अपनी पुस्तक "मोरेलिटी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन इन डेमोक्रेटिक गवर्नमेंट (1952) में वर्णन किया है। जैसा कि एपल्बी ने कहा है, एक नैतिक प्रशासक में (1) उत्तरदायित्व की अनुभूति (2) सम्प्रेषण और कार्मिक प्रशासन के लिए कौशल (3) संस्थागत संसाधनों को पैदा करना और उनका उपयोग करना (4) समस्या समाधान में संलग्न होने के लिए तत्पर होना और अन्यों के साथ एक टीम के रूप में कार्य करने के लिए तैयार होना, (5) नए विचारों को शुरू करने के लिए पर्याप्त आत्मविश्वास का होना। एक नैतिक प्रशासक अनाड़ी तरीके से नौकरशाही शक्ति का प्रयोग नहीं करता बल्कि चाहता है कि वह जन आवश्यकताओं, हितों और संवेदनाओं से प्रभावित होकर कार्य करें।

पाल एपल्बी का नाम लोक प्रशासन की गैर–मानकीय या आदर्श अवधारणा की पूर्ण अस्वीकृति, और प्रशासन को राजनीति से पृथक् करने के विचार का पूर्ण परित्याग करने से जुड़ा हुआ है यह उनकी पुस्तक बिग डेमोक्रेसी का मुख्य कथानक और सार था। उस पुस्तक में एपल्बी ने पूर्ण विश्वास से कहा था कि, जब मैं लोक प्रशासन पर चिन्तन करता हूँ तो मेरे मस्तिष्क में सम्पूर्ण कार्यपालिका शाखा होती हैं। उनकी पुस्तक सिटिजन एज सौवरिन 1962 में प्रकाशित हुई। यह रचना विभिन्न शीर्षकों जैसे संघवाद, अवरोध और सन्तुलन, सहायता अनुदान, मतदान, राजनीतिक नेतृत्व, राजनीतिक दल, संचार, समाचारपत्र, लोक वित्त और लोक कल्याणकारी राज्य पर लिखे गए निबन्धों का संग्रह है। प्रत्येक निबन्ध विचारपूर्ण और परिपक्व टिप्पणियों से परिपूर्ण हैं। सिटिजन एज सोवरिन का सूत्र कथानक यह है कि आधुनिक विश्व में एक प्रजातांत्रिक सरकार को मजबूत और प्रभावी होना चाहिए तथा यह शक्ति एक जागरूक नागरिक द्वारा ही प्रदान की जा सकती है। लेकिन यह तभी सम्भव है जब नागरिक एक स्वतंत्र समाज में सरकार की भूमिका और प्रकार्यों के बारे में व्यापक गलत धारणाओं से छुटकारा पा लें। यह पुस्तक अमरीकियों को सीधे सम्बोधित है लेकिन उनके निर्णय सभी प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं के लिए उचित एवं उपयोगी हैं।

अगर एपल्बी अपने विचारों में प्रगतिशील नहीं है तो कुछ भी नहीं है। एपल्बी इस आम धारणा कि प्रजातंत्र अधिक विकेन्द्रीकरण में सर्वोत्तम काम करता है, के विरुद्ध लोगों को अगाह करते हैं। वह इस मत का खण्डन करते हैं और अमरीकी मतदाताओं का उदाहरण देते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में मतदाता बड़ी संख्या में राष्ट्रीय परिस्थितियों के लिए मतदान करते हैं। उनका मत है कि सामाजिक न्याय के लक्ष्य प्रान्त या स्थानीय स्तर की अपेक्षा राष्ट्रीय स्तर पर और अच्छी तरह प्राप्त हो सकते हैं, विशेषकर के सम्बन्ध में। अपने लेख सब थाट्स आन डीसेन्ट्रलाइज्ड डेमोक्रेसी जो इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (अक्टूबर–दिसम्बर, 1962) में प्रकाशित हुआ था, उसमें एपल्बी ने कहा था कि प्रजातांत्रिक नेतृत्व नागरिकों पर इतना वजन डालता है जितना वह वहन नहीं कर पाते, और इसमें तत्परता से कई स्वतंत्र और स्वायत्त अभिकरण स्थापित करने की भी प्रवृत्ति होती है।

एक प्रभावी प्रजातंत्र की मुख्य आवश्यकता है कि यह ऐसे बनायी जाय कि, "इस पर प्रत्येक का थोड़ा प्रभाव हो न कि किसी एक का बहुत अधिक प्रभाव हो। एपल्बी अगाह करते हैं कि बिना ऊपर की ओर उत्तरदायित्व और जवाबदेही के वे शक्तियाँ वर्चस्व में आ जाती है जिन्हें जेफरसन ने स्थानीय अहम कहा था और जिन्हें भारत में साम्प्रदायिक अभिव्यक्तियाँ कहा जाता है।

एपल्बी को विश्वास है कि केवल केन्द्रीय सरकार ही सामाजिक न्याय और निष्पक्ष व्यवहार के लिए सर्वोत्तम सुरक्षा हो सकती है। उनका कहना है, प्रजातांत्रिक सरकार के पास इसके अधीन क्षेत्राधिकार की अपेक्षा अधिक किस्म के अल्पमत होते हैं और जितनी अधिक महानगरीय, राष्ट्रीय सरकार प्रजातांत्रिक विधि से संरचित होगी उतनी ही अधिक वह नागरिक स्वतंत्रतायें सुरक्षित बनाएगी। उनकी परिकल्पना है कि प्रत्येक उच्च अनुक्रम के उत्तरदायित्व में हस्तक्षेप करने की क्षमता दृढ़ता से बनायी रखनी चाहिए। जनप्रिय नियंत्रण की ऐसी ही क्षमता में प्रजातंत्र वास्तविक और जवाबदेही सम्भव होती है।

वे परिस्थितियाँ जिनमें नागरिक अपने अधिकार और उत्तरदायित्व का उन्मुक्त प्रयोग करते हैं उनमें एक द्विदलीय व्यवस्था या इसी के समरूप कुछ और भी हैं। एक बहुदलीय व्यवस्था में निःसंदेह, राजनीतिक अस्थिरता पैदा करने और लड़ाकू अल्पमतों द्वारा सत्ता हड़पने की प्रवृत्ति होती है। एक राजनीतिक दल प्रजातंत्र की सफलता के लिए आधार है और इसे केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय स्तरों में सक्रिय होना चाहिए। एपल्बी राजनीतिक दलों को सरकार द्वारा वित्तीय सहायता के पक्ष में हैं। दलों को धन की आवश्यकता होती है लेकिन यह व्यक्तिगत सहायता या निधि से नहीं मिलना चाहिए ष्व्यक्तिगत भेंट को व्यक्तिगत एहसान से जोड़ा जाता है।

प्रजातांत्रिक प्रशासन निर्माण हेतु एक केन्द्रीय सरकार को इतनी मजबूती से संगठित करना होगा कि वह उन शक्तियों पर विजय प्राप्त कर ले जिन्होंने आज हमारे राष्ट्रीय जीवन को अप्रजातांत्रिक बना दिया है। एक मजबूत केन्द्रीय सरकार ही वर्ग और जाति संरचनाओं को समाप्त कर सकती है तथा स्थानीय प्रजातंत्र सम्भव बना सकती है। संकीर्णतर निहित स्वार्थ स्थानीय स्तर पर ही फलते–फूलते हैं, इन्हें स्थानीय संगठनों द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि वे उन्हीं लोगों से बने होते हैं जिनके निहित स्वार्थ समाप्त करने हैं। एपल्बी ने कहा है, सरकारी शक्ति का प्रयोग उन्हीं व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए जिनकी सोच शासन की हो, उन्हीं व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए जो जनहित के प्रति, जनमत के प्रति संवेदनशील हों और अपने सरकारी कार्यों के लिए सार्वजनिक रूप से उत्तरदाई हों। निष्कर्ष में उन्होंने कहा, जिसे पहले केन्द्रीकृत नहीं किया गया है वह विकेन्द्रीकृत नहीं हो सकता। एपल्बी ने विकेन्द्रीकरण पर सीधे प्रहार किया है जिसे बहुत से व्यक्तियों द्वारा एक निरपेक्ष अच्छाई माना जाता है। वह अपने तरीके से ही कहते हैं कि विकेन्द्रीकरण और प्रजातंत्र के मध्य बिलकुल भी निश्चित सम्बन्ध नहीं होते। एक गैर प्रजातांत्रिक सरकार द्वारा विकेन्द्रीकरण अवश्य ही अप्रजातांत्रिक होगा। एक प्रजातांत्रिक सरकार द्वारा विकेन्द्रीकरण में कुछ प्रजातांत्रिक लक्षण होने की सम्भावना है, लेकिन यह सभी उदाहरणों में या पूर्णरूप से निश्चय ही सत्य नहीं हो सकता।

एपल्बी नौकरशाहों, शक्ति का अपरिहार्य भ्रष्टाचार, केन्द्रीकरण, स्थानीय प्रजातंत्र और लालफीताशाही जैसे अन्य दकियानूसी ख्यालों पर भी तीव्र प्रहार करते हैं। पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन वेलफेयर स्टेट में – लोक प्रशासन के भारतीय संस्थान में चार व्याख्यानों के अनुक्रम में – एपल्बी भारतीय लोक प्रशासन की समस्याओं और चिन्ताओं का विवेचन करते हैं। सदैव की भाँति उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील और मौलिक है। उनका दृढ़ विश्वास है कि राजनीति को प्रशासन से पृथक् नहीं किया जा सकता। लेकिन निश्चय ही इसका अभिप्राय यह नहीं है कि लोक सेवकों को दलगत राजनीति में संलग्न किया जाय। अन्तत, एक निर्णय की सफलता निर्वाचित प्रतिनिधियों की स्वीकृति की मात्रा से निर्धारित होती है। विशेषज्ञों द्वारा ही लोक कल्याणकारी राज्य का पहिया गतिशील बनाए रखा जाता है। लेकिन, एपल्बी का मत है कि विशेषीकरण में वृद्धि के कारण, विशेषज्ञ के कार्यों में समन्वय और एकीकरण

तथा कुल मिलाकर निर्णय लेने की आवश्यकता रहती है। विशेषज्ञ को पानी प्रदान करने वाला होना चाहिए, शीर्ष पर आसीन नहीं।

विशेषज्ञ और सामान्यः– विशेषज्ञ और सामान्य के जटिल प्रश्न पर, एपल्बी ने बुद्धिमत्ता से अवलोकन किया हैः– जैसा कि एपल्बी ने कहा है कि विशेषीकरण का महत्व तभी अधिक होता है जब विशेषीकरण बहुत अधिक हो, विभिन्न विशेषज्ञ एक दूसरे के प्रति तथा सामूहिक रूप से सामान्य ज्ञान वाले प्रशासकों के प्रति अधिक अच्छी तरह से अभिमुखीकृत होते हैं। इस प्रकार के अभिमुखीकरणों के विकास का उत्तरदायित्व सामान्य ज्ञान वाले प्रशासकों (जनरलिस्ट) का अधिक हो जाता है क्योंकि विशेषज्ञ प्रान्तवाद और आत्मसन्तोष भावना के शिकार हो सकते हैं।

सामान्य ज्ञान वाले पदों पर बहुत बड़ी संख्या में लोग कार्यरत होते हैं जिन्हें विशेषज्ञों को उपयोग करने के बारे में अधिक जानकारी नहीं होती। लोक सेवा की सबसे बड़ी आवश्यकता अधिक संख्या में श्रेष्ठ सामान्य ज्ञान वाले प्रशासक हैं। पाल एपल्बी कहते है – एक अच्छा सामान्य ज्ञान प्रशासक सम्पूर्ण समाज से कुछ चतुरता में प्राप्त करते हैं वह जनता के प्रति विशेषरूप से और सामान्यरूप से संवेदनशील होता है वह जानता है कि साधारण लोग कैसे सोचते और महसूस करते हैं, कब और किन सीमाओं के अन्तर्गत उन्हें गतिशील बनाया जा सकता है। उसमें सामान्य निर्णय की योग्यता होती है जिसे राजनीतिक बोध के अतिरिक्त अन्य किसी शब्द से नहीं समझा जा सकता। राजनीतिक बोध का प्रकार लोक प्रशासकों में राजनीतिज्ञों और राजनीतिक प्रक्रियाओं को समर्थन देने के लिए अमूल्य हैं, यद्यपि लोक प्रशासकों और राजनीतिज्ञों के मध्य तीव्र भेद होता है।

भारत में एपल्बी को उनके दो प्रतिवेदनों के लिए जाना जाता है जो उन्होंने देश की प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में प्रस्तुत की थी। उनका विवेचन निम्नलिखित परिच्छेदों में किया गया है।

भारत में लोक प्रशासनः– एक सर्वेक्षण का प्रतिवेदन, 1953, फोर्ड फाउन्डेशन के लोक प्रशासन सलाहकार के रूप में एपल्बी ने सितम्बर 1952 और जनवरी 1953 के बीच में भारत की प्रशासनिक व्यवस्था का सर्वेक्षण किया था। संविधान में यह स्पष्ट निर्णय ले लिया गया था कि भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य होगा तथा तीव्र गति विकास के साधन के रूप में नियोजन को स्वीकार कर लिया गया था। इस सर्वेक्षण में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल से लेकर जिला प्रशासन तक, साथ ही साथ सार्वजनिक उद्यमों के सम्पूर्ण विस्तार का अध्ययन किया गया है। लेखक द्वारा स्वयं पर लगाई गई सीमा कि इस प्रतिवेदन में वह 30,000 शब्द ही प्रयोग करेंगे, इसके लिए उन्हें इसे सात बार संक्षिप्त करना पड़ा।

उनकी अर्थहीन शब्दावली ने इसमें अस्पष्टता पैदा कर दी है इसका परिणाम यह हुआ है कि इस प्रपत्र को आराम से नहीं पढ़ा जा सकता। सरलता और पठनीयता के रूप में इस प्रतिवेदन ने जो खोया है वह इसने पाठकों को उत्साह से हृदय टटोलने पर विवश करने से प्राप्त कर लिया है।

एपल्बी के प्रतिवेदन अनुसार भारत में प्राप्त सरकार की व्यवस्था अत्यधिक उन्नतिशील है जो नवीन लक्ष्य इसने अपने सामने रखे हैं वे अभूतपूर्व चुनौतियाँ हैं और शासक नई विधियों को विकसित करने की तीव्र आवश्यकता के बारे में चैतन्य हैं जो उन्हें इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होंगे। एपल्बी ने भारत में क्रियाशील केन्द्रोभिमुख और केन्द्रोन्मुख शक्तियों को सूचीबद्ध किया है। राष्ट्र की एकता के लिए निम्नलिखित तत्व उत्तरदायी है – 1. लचीलेपन और विकास के लिए पर्याप्त स्थान छोड़ने में संविधान का सामान्य चरित्र। 2. केन्द्रीय अंगों में केन्द्र और राज्यों के मध्य विवादों का समाधान के लिए, शक्ति का निहित होना। 3. केन्द्रीय शक्ति के पास राज्य व्यवस्थापन पर उस समय निषेधाधिकार का प्रयोग करने की शक्ति जब उसका कानून राष्ट्रीय कानून के विपरीत हो। 4. आपातकालीन शक्ति के प्रावधान जिनके अधीन केन्द्र राज्य प्रशासन अपने–अपने क्षेत्रो में कार्य करते हैं। 5. केन्द्र के पास राष्ट्रीय कोष के संग्रह का दायित्व, रक्षा और विदेशी मामलों का प्रशासन 6. अनुदान और ऋण के द्वारा राज्यों के नितियों को प्रभावित करने की केन्द्र की क्षमता। 7. केन्द्र और राज्यों में छोटी लेकिन एक जैसी

प्रशासनिक सेवाएँ 8. केन्द्र द्वारा राज्यपालों की नियुक्ति 9. वास्तविक और ताकतव राष्ट्रीय उम्मीदें, परन्तु पुरे देश में एक जैसी नही 10. उपर्युक्त तत्व के विपक्ष में अनेकता पैदा करने वाले तत्व 11. दो संसदीय व्यवस्था– एक केन्द्र में और दूसरी राज्यों में, जो भविष्य में अलग–अलग पार्टीयों के नियन्त्रण मे हो सकती है। 12. स्वायत राज्य की प्रबल उदित होती इच्छा। 13. समाजिक कार्यों के लिए केन्द्र की राज्य पर निर्भरता। 14. राष्ट्रीय कोष का राज्यों को मिलने वाला हिस्सा जो राज्यो के कार्यो को सम्पन्न करने के लिए अपर्याप्त है। 15. पुरानी रियासतों की अलग होने की इच्छा। 16. कमजोर राष्ट्रीय नेता 17. जब अनुदान नीतियों के आधार पर न मिलकर प्रथागत हो जाएगा। 18. उच्च वर्ग के नेताओं तथा साधारण जनता के बीच में बड़ा सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक अन्तर। 19. क्रियात्मक मनः स्थिति की कमी :– यह आलस बढ़ाएगा और सामाजिक जागरूकता और जिम्मेदारी में कमी लाएगा। 20. अधिकांश व्यक्ति अपने व्यक्तिगत मामलों में ही, स्वाभाविक रूप से, संलग्न रहते हैं और सरकारी करों और हस्तक्षेप के विरुद्ध शेष करते हैं तथा सरकार पर अविश्वास करते हैं। भारत में इस कठिनाई के कारण ही अभिजात्य वर्ग और जनता के मध्य दूरी पैदा हो गयी है और एक सुपूरित, पारिभाषित पदसोपान का भी अभाव है।

केन्द्र द्वारा नियुक्त राज्यपाल की स्थिति, अधिकांशतः उत्सवात्मक या ध्वजमात्र है तथा जिसमें वास्तविक प्रभाव नहीं है। यह राज्यों द्वारा बड़े शहरों में आयुक्तों की नियुक्ति में राज्यों की शक्ति के विपरीत है।

एपल्बी संविधान द्वारा राज्यों के संदर्भ में केन्द्र की दुर्बल स्थिति से हैरान हैं। वास्तव में, भारत की केन्द्रीय सरकार किसी बड़े और महत्वपूर्ण राज्य की अपेक्षा कम शक्तिशाली है। करीब–करीब सम्पूर्ण केन्द्र, केवल प्रतिरक्षा, वैदेशिक मामले और केन्द्रीय करों की उगाही के अतिरिक्त, एक बड़ा स्टाफ संगठन है। इन अपवादों व कछ अन्योसहित नई दिल्ली में कोई सूत्र अभिकरण नहीं है। यह एक ऐसा क्षीण और अपूर्ण समन्वय है जिसमें वास्तविक, औपचारिक और निरंतर शक्ति नियंत्रण संलग्न नहीं है

प्रशासन की मशीन, प्रशासन की अपेक्षा, समन्वय के लिए बनायी गई हैं। केन्द्रीय सरकार करीब–करीब पूर्ण रूप से राज्यों पर निर्भर करती है। केवल इन्हें ही सामाजिक कार्यवाही कार्यक्रमों के प्रशासन का दायित्व सौंपा गया है। यहाँ तक कि केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय संसाधनों के वितरण में, केन्द्र को अपेक्षाकृत छोटा हिस्सा दिया गया है। जो अन्यत्र संघीय सरकारों की तुलना में बहुत कम है। एपल्बी ने कहा है कि, कोई भी अन्य बड़ी और महत्वपूर्ण राष्ट्रीय सरकार ... इतनी निर्भर नहीं है जितनी की भारत सरकार।

पदसोपान के निम्नतम स्तर पर स्थित व्यक्ति का दृष्टिकोण जो फाइल पर प्रथम टिप्पणी लिखता है वही महत्वपूर्ण होता है। अपूर्ण और अनुचित चेतन प्रतिहस्तान्तरण मंत्रियों और सचिवों को काम के बोझ से दबाने में महत्वपूर्ण कारण हैं। समूह निर्णय जो है और होना भी चाहिए, प्रशासन का सबसे विशिष्ट गण है। यह केवल बहुधा, अन्तरूमंत्रिवार्ताओं में होता है और जोड़ों के बीच में विभिन्न सम्मेलनों पर निर्भर होता है। यह ठीक ढंग से भरे हुए पिरामिडीय एकीकृत पदसोपानों के विभिन्न स्तरों में नहीं होता।

एपल्बी कार्मिक प्रशासन को रूढ़िवादी, अकल्पनाशील और सामन्तवादी मानते हैं। "भर्ती ... करीब पर्याप्त आक्रामक नहीं हैं। विज्ञापन, ऐसा प्रतीत होता है कि वकीलों ने लिखे हैं न कि कुशल विज्ञापन विशेषज्ञों या जनसम्पर्क कर्मचारियों द्वारा।

निष्कर्ष में उन्होंने कहा ... मैं सरकार में भर्ती और कार्मिक विकास की ओर एक नवीन, कल्पनाशील और आक्राकम दृष्टिकोण को अधिक महत्व देता हूँ। यहाँ कार्मिक कार्यशक्ति, जितनी ठीक प्रयोग से उपयोग में लायी जा रही है उससे कहीं अधिक है।

एपल्बी ने अखिल भारतीय सेवाओं के विस्तार का अनुमोदन किया है। उन्होंने वर्तमान में स्थित अखिल भारतीय सेवाओं के संगठन में भी कुछ सुधारों का सुझाव दिया है। वास्तव में मुझे आशा करनी चाहिए कि वर्तमान अखिल

भारतीय संवायें एक सामान्य अखिल भारतीय सेवा में उपसेवा में बन जाय, जिसमें विशेषकर एक उपसेवा से दूसरी उपसेवा में उच्चस्तरों में आसान गति हो। ये सेवायें आज एक दूसरे के लिए कहीं ज्यादा अनजानी हैं।

एपल्बी की संस्तुतियाँ जिनकी संख्या बारह है, उन्हें निम्नलिखित समूहों में रखा जा सकता है–

(अ) पिरामिडीय संरचना में मध्यस्तरीय कर्मचारियों को रिक्त स्थानों की पूर्ति हेतु भरने के लिए संरचनात्मक परिवर्तनों की आवश्यकता है।

(ब) विभिन्न सेवाओं की संख्या में निश्चित सीमा को हटाकर योग्य उम्मीदवारों के चयन हेतु पैनल निर्माण न कि उपलब्ध व्यक्तियों में से ही कार्मिक चयन कर मुख्य कार्मिकों को उपलब्ध करना। विभागों के कार्मिकों के विकास हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना। नवयुवक व युवतियों को इन सेवाओं में प्रवेश हेतु प्रशिक्षण के लिए स्नातक कार्यक्रम स्थापित करना।

(स) राष्ट्रीय स्तर पर एक लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना द्वारा शोध और सरकार के सुधार हेतु एक मशीनरी का निर्माण करना तथा भारत सरकार में एक संगठन और प्रणाली संगठन व्यवस्था बनाना एवं बाहरी विशेषज्ञों की सहायता से और आगे अध्ययन करना।

(द) विकासात्मक कार्यक्रमों के प्रभारी कार्मिकों का क्रियान्वयन प्रभाव बढ़ाना। यह तभी संभव होगा जब उनके स्तर को ऊँचा उठाया जाय तथा प्रक्रिया सरलीकरण करके उनके उत्तरदायित्व को सुदृढ़ किया जाय जिससे विभिन्न विभागों और मंत्रालयों के मध्य प्रति संदर्भ (क्रास रिफरेन्स) और सहमति माँग कम हो जाय। उत्तरदायित्व में विस्तार को देखते हुए पर्याप्त निर्देशक और मूल्यांकन के लिए एक मशीनरी का निर्माण अनिवार्य हो जाता है।

राजस्व में वृद्धि करने के लिए एपल्बी ने कृषि आय कर का सुझाव दिया था और कहा था कि इसे सभी राज्यों में लागू किया जाना चाहिए। भूमि परीक्षण और कर की दर दोहरायी तथा उचित बनायी जानी चाहिए। बकाया राशि समाप्त करने के लिए कर संग्राहकों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर एक लोक प्रशासन संस्थान और संगठन एवं विधि (ओ. एण्ड एम.) की स्थापना की दो मुख्य संस्तुतियाँ स्पष्ट रूप से क्रियान्वित की जा चुकी है। जहाँ तक अन्य संस्तुतियों का सम्बन्ध है कुछ भी विशेष नहीं किया गया है।

सरकार की औद्योगिक और व्यावसायिक उद्यम, 1956 के विशिष्ट संदर्भ में भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था का पुनर्परीक्षण

पाल एपल्बी ने अपने प्रतिवेदन सरकार की औद्योगिक और व्यावसायिक उद्यम, 1956, के विशिष्ट संदर्भ में भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था का पुनर्परीक्षण में भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की कमियों तथा सरकारी उद्यमों में स्वायत्तता विचार क्रियान्वयन के बारे में बताया है।

एपल्बी का मुख्य जोर इस बात पर है कि सरकार का आकार बढ़ना चाहिए और इस विकास क्षमता का संरचनात्मक और प्रक्रियात्मक व्यवस्था द्वारा लाभ उठाना चाहिए। वे आनाकानी और अक्षमता से स्तब्ध थे। सम्पूर्ण प्रतिवेदन में प्रतिहस्तान्तरण की आवश्यकता पर बल दिया गया है। तथा इसे संस्थात्मक प्रसार हेतु अपरिहार्य माना गया है। महालेखा नियंत्रक का पद प्रभावी प्रतिहस्तान्तरण के मार्ग की बाधा है। एपल्बी ने महालेखा नियंत्रक की शक्तियों के पुनर्निरीक्षण के लिए संस्तुति की है। एपल्बी भारतीय नौकरशाही में विद्यमान अधीन कर्मचारियों की योग्यताओं का उपयोग न करने की प्रवृत्ति के आलोचक हैं।

एपल्बी ने प्रत्येक मामले में हर बात पर प्रक्रिया अपनाने के वर्तमान दृष्टिकोण, तथा नेतृत्व कल्पनाशीलता की कमी की आलोचना की है। पुनर्विलोकन प्रक्रिया जिसे भारतीय प्रशासन में विकसित किया गया है वह सम्पूर्ण सरकार को एक विकट परिस्थिति में झोंक देती है। एपल्बी कहते हैं कि वित्त मन्त्रालय का मुख्य उद्देश्य अब

अन्तःमंत्रालय वित्तीय योग्यता कार्यक्रम अभिकर में विकसित करना, लेखा कार्य को वित्त के सामान्य निर्देशन पर मंत्रालयों को देना, महालेखा परीक्षक की भूमिका सीमित करना, कार्मिक भर्ती और व्यवस्था में सुधार और अन्ततः सरकार के मूल्यांकन में सांसदों के दृष्टिकोण को सामान्य और सकारात्मक बनाकर ऊँचा उठाना है।

एपल्बी ऐसा अनुभव करते हैं कि वित्त और गृह मंत्रालयों को उत्तरदायित्व का उच्चस्तर दिया जाना चाहिए और उन्हें अधिक सामान्य व कम विशिष्ट नियंत्रण का प्रयोग समन्वयात्मक व्यवहार प्राप्त करने के लिए करना चाहिए। उनका यह विचार है कि वित्त मंत्रालय को श्रेष्ठ बजट निर्माण में अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

एपल्बी द्वारा महालेखा निरीक्षक पर लगाया गया अभियोग बहु उद्देश्यीय और बेरहम है जो मलरूप से उनकी अन्य संस्ततियों की भाँति. प्रशासन में तीव्रगति लाने के असीमित उत्साह से प्रवाहित होता है। महालेखा निरीक्षक के बारे में उनके विचारों को इतनी ही कठोरता से चनौती दी गयी है। संसदीय नियंत्रण और वैधानिक लेखा परीक्षण भारतीय संविधान की मौलिक विशेषतायें हैं और उनका आदर और प्रभाव सम्पूर्ण प्रशासनिक मशीन पर बरकरार रखा जाना चाहिए। ऐसा कहने का आशय यह अस्वीकार करना नहीं है कि लेखा परीक्षण में सुधार का अवसर है। लेखा परीक्षण का पुनर्अभिमुखीकरण आवश्यक है। इसे अपने कार्य में और अधिक कल्पनाशीलता दिखाने की आवश्यकता है।

इन प्रतिवेदनों के प्रकाशन के और वर्तमान समय के बीच जो समय बीत चुका है वह एपल्बी की संस्तुतियों को मानस पटल पर देखने का अवसर देता है। उनका अधैर्य और भौलिक सुधारों के समर्थन का अब सही रूप में मूल्यांकन किया जा सकता है। अब यह स्वीकार किया जाता है कि योजनाओं का असन्तोषजनक क्रियान्वयन कई अन्य कारणों के साथ बड़ी महत्वाकांक्षा का परिणाम था। अतः एपल्बी द्वारा किए गये परीक्षण की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। एक विदेशी से यह अपेक्षा करना कि वह पूर्वानुमान लगा ले कि राष्ट्र ने चबाने से ज्यादा काट लिया है। नियोजन के प्रति हमारे दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन के बावजूद भी इन प्रतिवेदनों की सार्थकता या उपयोगिता आज भी समाप्त नहीं हुई है। नियोजन स्थायी हो चुका है। पिछले वर्षों के हमारे अनुभव ने प्रजातंत्र पर से हमारे विश्वास को नहीं हिलाया है। भविष्य में नियोजन, चाहे कोई भी आकार क्यों न ग्रहण करें, एपल्बी का केन्द्रोन्मुख और केन्द्राभिमुख शक्तियों की हमारी राजनीतिक व्यवस्था में कीड़ा के बारे में अन्तर्दृष्टि युक्त विश्लेषण इस परिस्थिति में ताजा और सारपूर्ण रहेगा। उनकी संस्तुतियों की सामान्य सार्थकता बिलकुल भी बेकार नहीं हुई है, और अन्य बातों से कहीं अधिक, ये प्रतिवेदन आज भी राष्ट्र के लिए नैतिक स्वास्थ्यवर्द्धक पेय है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. सरदार पटेल का भारतीय प्रशासन में योगदान स्पष्ट करें।
2. स्वामी विवेकानन्द के नेतृत्व, संगठन तथा वैश्वीकरण सम्बन्धी विचार लिखें।
3. पाल. एच. एपल्बी के प्रतिवेदन (1953) का वर्णन करें।

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिक अखिल भारतीय सेवाओं का जनक कौन है।
2. प्रान्तीय प्रधानमन्त्री सम्मेलन का आयोजन कब हुआ।
3. स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो धर्म महा–सम्मेलन कब भाग लिया।
4. पाल एच0 एपल्बी की दो पुस्तकों का नाम लिखें।
5. रिएक्जामिनेशन ऑफ इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन सिस्टम नामक पुस्तक कब लिखी गई।

अध्याय – 7

वुडरो विल्सन
(WOODROW WILSON)

''लोक–प्रशासन सार्वजनिक विधि का विस्तृत एवं व्यवस्थित क्रियान्वयन है। सामान्य विधि की प्रत्येक विशिष्ट अनुप्रयुक्ति प्रशासन का कार्य है।'' –वुडरो विल्सन

1913 से 1921 तक संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति पद को सुशोभित करने वाले वुडरो विल्सन का नाम लोक–प्रशासन में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वुडरो विल्सन ही लोक प्रशासन के जनक माने जाते हैं। यही कारण है कि वे लोक–प्रशासन के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सितारे बन गए हैं । यद्यपि विल्सन ने लोक–प्रशासन के सिद्धान्तों पर बहुत ज्यादा नहीं लिखा है परन्तु उनकी प्रशासनिक क्रियाओं को राजनीतिक क्रियाओं से अलग करके देखने की अन्तर्दृष्टि ही लोक–प्रशासन के उदय का एक महत्त्वपूर्ण कारक बनी। 1887 में पोलिटिकल साइन्स क्वार्टरली में उनका एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक था, 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' (The Study of Administration) । यहीं से अध्ययन–अनुशासन के रूप में लोक–प्रशासन की विकास यात्रा प्रारम्भ होती है। यहाँ से लेकर आज लोक–प्रशासन 134 वर्ष का हो गया है तथा इसकी बौद्धिक जड़ें वुडरो विल्सन के अग्रणी योगदान में देखी जा सकती हैं।

वुडरो विल्सन का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका के वर्जीनिया राज्य में 28 दिसम्बर, सन् 1856 को हुआ। विल्सन ने राजनीति, शासन तथा कानून की शिक्षा प्राप्त की। आपने 1879 में प्रिन्सटन विश्वविद्यालय से स्नातक उपाधि प्राप्त की। 30 वर्ष की आयु में विल्सन को पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई। जब विल्सन 28 वर्ष के थे तभी उन्होंने 'कॉंग्रेशनल गवर्नमेन्ट' (Congressional Government) शीषर्क से पुस्तक लिखी। इससे विल्सन ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

30 वर्ष की उम्र में विल्सन प्रिन्सटन विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर बने तथा 1902 तक वे इस पद पर बने रहे। तत्पश्चात् 1910 तक विल्सन इसी विश्वविद्यालय के प्रेसीडेन्ट बने । केवल अकादमिक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि राजनीति के क्षेत्र में भी विल्सन प्रतिभा के धनी थे और इसका प्रमाण था 1910 में उनका अमेरिका के न्यूजर्सी राज्य का गवर्नर बनना। वे तीन वर्ष तक न्यूजर्सी के गवर्नर रहे तथा 1913 में ही संसार की प्रमुख महाशक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति बने । यह अपने आप में गौरव का विषय है कि लोक–प्रशासन के जनक वुडरो विल्सन 8 वर्ष तक अमेरिका के राष्ट्रपति रहे, जो शासद संसार के सबसे शक्तिशाली सार्वजनिक पदों में से एक था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय विल्सन का नेतृत्व अमेरिका के लिए काफी लाभदायक रहा। राष्ट्रपति के पद का दूसरा कार्यकाल पूर्ण कर लेने के तीन वर्ष पश्चात् ही 1924 में इस महान् विचारक और राजनीतिज्ञ का निधन हो गया और लोक–प्रशासन का अनुशासन एक रिक्तता महसूस करने लगा। अभी लोक–प्रशासन अधिक विकसित नहीं हो पाया था कि इसके जनक इस संसार से विदा हो गए। फिर भी विल्सन की मेहनत रंग लाई और धीरे–धीरे बहुत से विद्वान् लोक–प्रशासन विषय में रुचि लेने लगे और विषय विकास यात्रा पर चल पड़ा जिसकी नींव स्वयं विल्सन ने रखी थी।

वुडरो विल्सन राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर होने के साथ–साथ, एक प्रशासनिक चिन्तक, एक शिक्षाशास्त्री, एक इतिहासकार, एक सुधारक तथा एक अच्छे नेता थे। विल्सन ने कुछ लेख और कई पुस्तकें लिखीं। उनकी कतिपय रचनाएँ इस प्रकार हैं

- Congressional Government (1885)
- The State (1889)
- Division and Reunion (1893)
- An Old Mater and Other Political Essays (1893)
- Mere Literature and Other Essays (1896)
- George Washnigton (1896)
- A History of American People (1902)
- Constitutional Government in the United States (1908)

उपर्युक्त रचनाओं के साथ 1887 में पोलिटिकल साइन्स क्वार्टरली में प्रकाशित उनका लेख द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' लोक–प्रशासन के उदय की जड़ माना जा सकता है। जॉन होपकिन्स विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रिचर्ड एली ने विल्सन को काफी प्रभावित किया। 'उनके व्याख्यान विल्सन के लिए बहुत महत्त्व के थे क्योंकि इन्होंने ही विल्सन को अमेरिकी प्रजातान्त्रिक राजनीति में यूरोपीय प्रशासनिक प्रणालियों के सात्मीकरण (Assimilation) के बारे में सोचने को प्रेरित किया।' [आर्थर लिंक (सम्पादित): 'दी पेपर्स ऑफ वुडरो विल्सन', 1968, पृष्ठ–43,। स्वयं रिचर्ड एली लिखते हैं कि, "जब मैं प्रशासन की महत्ता पर बोला तब मैंने महसूस किया कि जैसे मैंने कोई चिन्गारी गिराई हो और विल्सन में एक अग्नि प्रज्ज्वलित की हो।" निःसन्देह हर विद्वान् अपने समय की परिस्थितियों और अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

वुडरो विल्सन के प्रमुख विचारों तथा उनके योगदान को निम्नलिखित शीर्षकों में बाँटकर अध्ययन करना अधिक सरल होगा।

लोक–प्रशासन की परिभाषा एवं प्रशासनिक विज्ञान (Definition of Public Administration and Administrative Science)

विल्सन 31 वर्ष के थे जब पोलिटिकल साइन्स क्वार्टरली के जून, 1887 अंक में उनका एक लेख छपा, जिसका शीर्षक था, 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन'। ड्वाइट वाल्डो के मत में विल्सन का यह लेख स्व–जागरुक लोक–प्रशासन के इतिहास का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है तथा साथ ही अन्तहीन प्रेरणा तथा विवाद का स्रोत भी है। वास्तव में 1885 में विल्सन ने 'दी आर्ट ऑफ गवर्निंग' शीर्षक से एक लेख लिखा, जिसको कि उन्होंने प्रकाशित नहीं करवाया। जब कॉरनैल विश्वविद्यालय में उन्हें बोलने के लिए आमन्त्रित किया गया तो विल्सन ने अपने आगे के विचारों को ध्यान में रखते हुए इस लेख का पुनरीक्षण किया तथा यही पुनरीक्षण लेख फिर 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' शीर्षक से प्रकाशित किया गया और यहीं से अध्ययन अनुशासन के रूप में लोक–प्रशासन की विकास यात्रा शुरु होती है। हेनरी बेगडन ने विल्सन के इस लेख के बारे में लिखा कि उनका यह लेख प्रशासन के विशेषज्ञों के बीच काफी लोकप्रिय हो गया तथा हमेशा यह उनके लिए बुद्धिमता की खान रही।

वुडरो विल्सन अपने लेख के प्रारम्भिक भाग में इस बात का उल्लेख करते हैं कि लोक–प्रशासन का अध्ययन इतना देरी से क्यों विकसित हुआ जबकि राजनीति विज्ञान जिसका कि यह एक उत्पाद या यूँ कहें फल है, लगभग 2200 वर्ष पहले से शुरु हो गया था। यह प्रश्न और अधिक महत्त्वपूर्ण इसलिए भी हो जाता है कि लोक–प्रशासन तो सरकार का सबसे स्पष्ट भाग है, यह तो कार्यरत सरकार है। फिर भी आखिर ऐसा क्यों हुआ कि अध्ययन विषय के रूप में लोक–प्रशासन का विकास इतनी देरी से हुआ। विल्सन इसका कारण बताते हुए तर्क देते

हैं कि राजनीति विज्ञानियों ने अपना ध्यान केवल विशुद्ध अमूर्त राजनीतिक विषयों पर ही केन्द्रीत किया जैसे कि राज्य की प्रकृति, प्रभुसत्ता, लोकप्रिय सत्ता आदि। विल्सन के अनुसार, 'प्रशासन के अध्ययन का विकास समाज में बढ़ती हुई जटिलताओं, राज्य के कार्यों में बढ़ोतरी होने तथा लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों पर सरकारों की वृद्धि के परिणामस्वरूप हुआ। कार्यों के इस प्रकार लगातार बढ़ते हुए क्रम ने यह प्रश्न उठाया कि 'कैसे' और 'किन' दिशाओं में इन कामों को निष्पादन किया जा सकता है। इसके लिए विल्सन ने सुझाव दिया कि सरकार में सुधार की आवश्यकता है और ये सुधार प्रशासन के क्षेत्र में होने चाहिए। विल्सन प्रशासन के अध्ययन को इसलिए महत्त्वपूर्ण मानते थे कि यह पता लगाया जाए कि किस प्रकार सरकार अच्छे से और सफलतापूर्वक कार्य कर सकती है और किस प्रकार सरकार इन कार्यों को सर्वाधिक दक्षता और न्यूनतम लागत पर कर सकती है।

प्रशासन के अध्ययन की अवहेलना का एक ओर कारण बताते हुए विल्सन कहते हैं कि 19वीं शताब्दी से पूर्व देशों की जनसंख्या बहुत अधिक नहीं थी और इस कारण सरकार के कार्य सीमित थे तथा प्रशासन करना सरल था। परन्तु 19वीं शताब्दी तक आते–आते व्यापार और वाणिज्य की जटिलताओं, बड़े–बड़े निगमों के अभ्युदय, सेवीवर्गीय प्रबन्ध की समस्याएँ आदि काफी व्यापक हो गईं और सरकार के कार्य अब काफी विभिन्न और जटिल हो गए। सरकार का शायद ही कोई ऐसा कर्तव्य है, जो कि कभी सरल था और आज जटिल नहीं है। सरकार के एक समय कम कार्य थे और अब बीसियों कार्य हैं। इस प्रकार राज्य के कार्यों में आए इस परिवर्तन के कारण यह आवश्यक हो गया कि इन कार्यों को 'कैंसे' किया जाए? और यहीं से प्रशासन के अध्ययन की आवश्यकता हुई। नए कार्य प्रशासन द्वारा किए जाने लगे और इन कामों को अच्छे से करने के लिए प्रशासन का अध्ययन जरुरी हो गया।

विल्सन का यह मानना था कि किसी देश का संविधान बनाना आसान है पर उसे चलाना कहीं अधिक मुश्किल है और संविधान को चलाने का दायित्व सरकार और उसके कार्यात्मक भाग अर्थात् प्रशासन का है। विल्सन का कथन है कि "लोक–प्रशासन सार्वजनिक कानून का विस्तृत और व्यवस्थित क्रियान्वयन है। सामान्य कानून का प्रत्येक अनुप्रयोग प्रशासन का कार्य है।" विल्सन लिखते हैं कि सरकारी क्रिया की व्यापक योजनाएँ प्रशासनिक नहीं होती, यद्यपि ऐसी योजनाओं का विस्तृत क्रियान्वयन प्रशासनिक होता है।

विल्सन प्रशासन के विज्ञान होने की वकालत करते हैं। वे कहते हैं कि प्रशासन का विज्ञान राजनीति के विज्ञान के अध्ययन का सबसे ताजा फल है। अपने लेख में विल्सन कहते हैं कि आज हमारे पास प्रशासन विज्ञान है जो हमारे पास पहले कभी नहीं था। "विल्सन इस बात की आलोचना करते हैं कि अमेरिकी प्रशासनिक व्यवहार में वैज्ञानिक पद्धति को नहीं अपनाया गया है । यद्यपि उन्होंने यह महसूस किया कि इस बात की कोई स्पष्ट अवधारणा नहीं है कि क्या चीजें अच्छा प्रशासन बनाती हैं। ऐसा इसलिए था कि प्रशासनिक विज्ञान पहले फ्रांस और जर्मन अकादमियों में यूरोप में ही विकसित हुआ था। परिणाम यह हुआ कि प्रशासन बन्द राज्यों (Compact States) तथा यूरोपीय सरकारों के केन्द्रीकृत स्वरूपों की आवश्यकताओं के अनुरूप ही विकसित हुआ।" प्रशासन का विकास यूरोपीय भूमि पर ही क्यों हुआ, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए विल्सन कहते हैं कि एक तो यूरोपीय देशों में सरकारें लोक सहमति से स्वतन्त्र होती हैं और दूसरे, एकाधिकारवादियों की सरकारों पर एकाधिकार रखने की इच्छा के कारण ऐसा हुआ।

विल्सन का मत था कि राजतन्त्र की तुलना में प्रजातन्त्र में प्रशासन को संगठित करना कहीं अधिक कठिन कार्य होता है। यही कारण है कि अमरीका में प्रशासन विज्ञान की प्रगति काफी धीमी रही। विल्सन का यह स्पष्ट मत था कि कोई देश अपने प्रशासन पर तब तक अधिक अच्छी तरह से ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता जब तक कि वह अपने संविधान के साथ छेड़छाड़ बन्द नहीं कर देता। ऐसा इस कारण होता है कि बिना परिवर्तनों के कोई भी संविधान 10 वर्ष से ज्यादा नहीं चल सकता और सरकारें इन परिवर्तनों और बदलावों में ही अधिक व्यस्त रहती है और वे प्रशासन पर अपना ध्यान केन्द्रित ही नहीं कर पाती हैं। इस कारण विल्सन कहते हैं कि संविधानिक

सिद्धान्तों पर की जाने वाली बहसों को एक तरफ छोड़ दिया जाए और प्रशासन के विज्ञान का व्यवस्थित विश्लेषण किया जाए और उसे समझने की कोशिश की जाए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' के प्रारम्भिक भाग में विल्सन प्रशासन के विज्ञान के अध्ययन की वकालत करते हैं और इस बात पर अधिक जोर देते हैं कि संविधानिक बहसों के बजाय प्रशासन के विज्ञान को समझने पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना चाहिए क्योंकि संविधान बनाने से ज्यादा मुश्किल व महत्त्वपूर्ण उसे चलाना होता है।

राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव (Politics & Administration Dichotomy)

अपने लेख के प्रारम्भिक भाग में ही विल्सन राजनीति और प्रशासन को अलग–अलग करने पर जोर देते हैं। विल्सन राजनीति और प्रशासन के बीच पाए जाने वाले सम्बन्धों का परीक्षण करते हैं। यद्यपि विल्सन राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव (Politics & Administration Dichotomy) का समर्थन करते हैं तथापि इस विषय पर उनके विचारों में अधिक स्पष्टता देखने को नहीं मिलती है क्योंकि कई बार विल्सन राजनीति और प्रशासन की पारस्परिक निर्भरता और उनके घनिष्ट सम्बन्धों की चर्चा भी करते हैं। वे कहते हैं कि प्रशासनिक और गैर–प्रशासनिक कार्यों के बीच कोई भी विभाजन रेखा सरकार के इस या उस विभाग के बीच नहीं खींची जा सकती जब तक कि अन्तर की उच्च पहाड़ी पर और नीचे की गहरी ढलान पर और वैधानिक कार्यवाही के घने जंगलों को पार करने और 'यदि' व 'परन्तु', 'कब' व 'तब भी' के इधर–उधर न घूमें और वह भी तब तक जब तक कि आम नजर से पूरी तरह औझल न हो जाए। पुनः विल्सन कहते हैं कि, "-----प्रशासन को सार्वजनिक कानूनों की अन्य शाखाओं के साथ उसके सम्बन्धों से बिना तोड़े–मरोड़े और उसके सही अर्थों से दूर करे, नहीं काटा जा सकता। उसके आधार राजनीति के गहरे और स्थाई सिद्धान्त हैं।" विल्सन के इन कथनों से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि विल्सन यद्यपि लोक–प्रशासन को एक विषय के रूप में उभारने का प्रयास कर रहे थे तथापि वे प्रशासन के राजनीति से गहरे अन्तर्सम्बन्धों से भी पूर्णतः सचेत थे।

विल्सन का अभीष्ट प्रशासन को राजनीति से पृथक् करना था। इसके लिए विल्सन राजनीति और प्रशासन को एक–दूसरे से अलग बताते हुए राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव की वकालत करते हैं। विल्सन का मत था कि प्रशासन का क्षेत्र व्यवसाय का क्षेत्र है। यह राजनीति की आपाधापी और हंगामे से अलग होता है। यह अनेक मामलों में, यहाँ तक कि संविधानिक विवादों के विचार–विमर्श से भी दूर ही रहता है। यह राजनीतिक जीवन का अंग मात्र उसी रूप में है, जिस प्रकार काउंटिंग–हाउस अर्थात् गणना–कार्यालयों का सम्बन्ध सामाजिक जीवन से होता है। इसका अर्थ है एक यन्त्र के रूप में उत्पादित वस्तु का अंग–मात्र होना। प्रशासन स्वयं राजनीति के दायरे से बाहर ही रहता है। प्रशासनिक प्रश्न राजनीतिक प्रश्न नहीं होते। यद्यपि राजनीति प्रशासन के लिए पाठ तैयार करती है और बताती है कि प्रशासन को क्या–क्या करना है लेकिन राजनीति को चाहिए कि वह प्रशासनिक कार्यालयों का दुरुपयोग न करे।

इस प्रकार इस वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि विल्सन प्रशासन और राजनीति को अलग अलग करके देखते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ एक ओर विल्सन राजनीति और प्रशासन के पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव के सबसे बड़े समर्थक भी थे। विल्सन की इस मानसिकता की विवेचना अलग–अलग विद्वान् अलग–अलग ढंग से करते हैं। फ्रेडरिक मोशर का मानना है कि विल्सन ने राजनीति प्रशासन द्वैतभाव पर सबसे शक्तिशाली वक्तव्य दिया है। इसके विपरीत फ्रेड रिग्स का मानना है कि विल्सन के लिए राजनीति और प्रशासन न केवल आपस में गुंथे हुए हैं बल्कि प्रशासनिक क्रियाओं को राजनीतिक साधनों द्वारा बनाई गई सामान्य नीतियों के क्रियान्वयन के सिवाय देखना मुश्किल है। इस प्रकार विल्सन को ऐसा कोई भ्रम नहीं था कि प्रशासनिक विकास राजनीतिक निर्वात में हो सकता है।

प्रशासन और जनमत (Administration and Public Opinion)

विल्सन प्रशासन और जनमत (Public Opinion) के सम्बन्धों का भी परीक्षण करते हैं। प्रश्न यह था कि प्रशासन को चलाने में जनमत के किस भाग को लिया जाए। विल्सन का मानना था कि जनमत एक सत्तावादी आलोचक की जगह ले सकता है। पर समस्या यह आती है कि जनमत को हस्तक्षेप की आदत से पीड़ित हुए बिना कैसे प्रभावी बनाया जाए। यद्यपि प्रशासन के कार्यों में जन आलोचना एक फूहड़ कण्टक है तथापि नीति–अधीक्षण की क्रियाविधि के रूप में यह न केवल लाभदायक ही है अपितु पूरी तरह से अनिवार्य भी है। अतः विल्सन का मत था कि प्रशासनिक अध्ययन को जन आलोचना नियन्त्रण का सबसे अच्छा साधन खोजना चाहिए और साथ ही उसे प्रशासन में हस्तक्षेप से बचना चाहिए।

लोक–सेवा (Civil Service)

विल्सन तकनीकी रूप से शिक्षित सिविल सेवा की वकालत करते हैं। जीवन्त लोकतन्त्र के लिए योग्यता पर आधारित सिविल सेवा अपरिहार्य है। यद्यपि विल्सन का विश्वास था कि प्रशासन सिद्धान्ततः राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल नहीं होते हैं पर साथ ही वे ऐसा नौकरशाह अभिजन–वर्ग बनाने के खिलाफ थे जो कि लोकतान्त्रिक नियन्त्रण में न हो। विल्सन लोकतन्त्र में सिविल सेवा के विकास की सही दिशा के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं

हमारे लिए एक ऐसी सिविल सेवा आदर्श है जो सुसंस्कृत तथा पर्याप्त आत्म–निर्भर है जो संवेदना और उत्साह के साथ काम करे और निर्वाचनों तथा स्थिर जन–परामर्श के माध्यम से 'लोकप्रिय विचार' के साथ घनिष्ट रूप से जुड़ी हो।

विल्सन अमेरिका में लोक सेवाओं में सुधार लाने के समर्थकों में अग्रणी थे। उनका मत था कि सिविल सेवा पेशेवर रूप से समर्थ और राजनीतिक रूप से निष्पक्ष होनी चाहिए। वस्तुतः विल्सन पहले व्यक्ति थे जिन्होंने राजनीतिक रूप से तटस्थ सिविल सेवा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस प्रकार विल्सन ने आधुनिक सेवीवर्गीय प्रशासन की बौद्धिक आधारशिला की नींव रखी। विल्सन ने महसूस किया कि सिविल सेवा में सुधार के जो प्रयास अमेरिका में हो रहे थे वे सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार की शुरुआत थी। ये सुधार जो सेवा को पक्षपातविहीन बनाने का इरादा रखते थे, ने प्रशासन को व्यवसाय के समान चलाने का रास्ता दिखाया। नियुक्तियों के तरीकों में सुधार कार्यपालिका के कार्यों और कार्यकारी संगठनों व क्रियाओं पर भी लागू किए जाने चाहिए।

प्रशासन के अध्ययन की विधियाँ (Methods to Study Administration) .

अपने लेख के अन्तिम भाग में विल्सन प्रशासन के अध्ययन के सबसे अच्छे तरीके (Method) का परीक्षण करते हैं। वे दार्शनिक विधि को अस्वीकार करते हैं और ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विधि पर जोर देते हैं। विल्सन का मत था कि "राजनीति के पूरे क्षेत्र में ये विधियाँ उतने सुरक्षित ढंग से लागू नहीं की जा सकती जितनी कि प्रशासन के क्षेत्र में लागू की जा सकती है।" विल्सन का मत था कि सरकारों के तुलनात्मक अध्ययनों के बिना हम इस गलत अवधारणा से छुटकारा नहीं पा सकते कि प्रशासन का स्वरूप प्रजातान्त्रिक और गैरप्रजातान्त्रिक राज्यों में अलग–अलग होता है। किसी प्रणाली की कमजोरियों, गुणों और विशेषताओं को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक कि हम उस प्रणाली की तुलना दूसरी प्रणाली से न करें। पर इससे विदेशी प्रणालियों से आयात का भय पैदा होता है। इस भय को दूर करने के लिए विल्सन कहते हैं कि If I see a murderous fellow sharpening the knfie cleverly, I can borrow his way of sharpening knife without borrowing his probable intention to commit murder with it. इसलिए विल्सन यह महसूस करते हैं कि यूरोपीय एकतन्त्रों से बिना उसकी एकतन्त्रीय भावना और साधनों को आयात किए उनके प्रभावी प्रशासनिक तरीकों को सीखा जा सकता है।

विल्सन के प्रशासनिक प्रौद्योगिकी के निर्यात पर विचारों को अलग–अलग विद्वान् अलग–अलग तरीके से विश्लेषित करते हैं। फ्रेड रिग्स के मत में विल्सन ने लोकतान्त्रिक सरकारों का समर्थन किया है और इसलिए वे गैर–लोकतान्त्रिक सरकारों को प्रशासनिक प्रौद्योगिकी के निर्यात का समर्थन नहीं करते हैं। पर फेरल हैडी का मत है कि विल्सन प्रशासनिक प्रौद्योगिकी के निर्यात पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाते हैं।

आलोचनात्क मूल्यांकन (Critical Evaluation)

निःसन्देह वुडरो विल्सन लोक–प्रशासन अनुशासन के जनक हैं। उन्होंने अपने लेख में जिन सिद्धान्तों का वर्णन किया उन्हें एक–एक कर वैध मान लिया गया। फिर भी विल्सन की कतिपय आलोचनाएँ की जाती हैं। रिचर्ड स्टिलमैन का मत है कि विल्सन द्वारा प्रशासन को 'व्यापारिक' गतिविधि के समान बताना वाकई परेशान करने वाला है। एक ओर तो वे सिविल सेवा को संविधानिक सत्ता के प्रति उत्तरदायी मानते हैं और दूसरी ओर, प्रशासन को व्यापार जैसा मानते हैं। विल्सन की दूसरी आलोचना उनके राजनीति और प्रशासन सम्बन्धी विचारों से सम्बनधित है। कहीं–कहीं वे राजनीति और प्रशासन के बीच गहन अर्न्तसम्बन्धों की बात करते हैं और कहीं उनके द्वैतभाव की। वे वस्तुतः दुविधा में थे। विल्सन का यह लेख काफी सामान्य, अधिक व्यापक और काफी अस्पष्ट था। ऐसा लगता है कि विल्सन स्वयं ही नहीं जानते थे कि लोक प्रशासन है क्या। वान रिपर तो विल्सन और उनके लेख को लोक प्रशासन के जन्मदाता होने की जिम्मेदारी से ही मुक्त करते हैं।

उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद आज लोक–प्रशासन के क्षेत्र में वुडरो विल्सन का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया गया है। अपने 'विशिष्ट' लेख द्वारा विल्सन ने न केवल 'प्रशासन का विचार' ही प्रस्तुत किया अपितु एक सामान्य विषय के रूप में लोक–प्रशासन की भी नींव रखी। ड्वाइट वाल्डो के मत में स्व–जागरुक लोक–प्रशासन के इतिहास में वुडरो विल्सन का लेख सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि "विल्सन का लेख ऐतिहासिक महत्त्व का है। प्रशासन के सिद्धान्त (Theory) पर यह एक उत्कृष्ट कार्य है। उन्होंने बड़ी ही संक्षिप्तता के साथ लोकतन्त्र में लोक–प्रशासन की समस्याओं और गुणों (Properties) का विश्लेषण किया। इसमें भविष्यवाणी के गुण है। -----उन्होंने लोक प्रशासन के अध्ययन और व्यवहार के बीच के अन्तराल को कम करना चाहा। अपने इस अतिविशिष्ट लेख द्वारा ही विल्सन ने प्रशासन का विचार प्रतिपादित किया।

सारांशः– वुडरो विल्सन जिन्हें लोक–प्रशासन शास्त्र का जनक माना जाता है, का लोक–प्रशासन में बड़ा सम्मान किया जाता है। जून, 1887 में 'पॉलिटिकल साइन्स क्वार्टरली' में छपे अपने लेख 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन के पश्चात् ही एक अध्ययन अनुशासन के रूप में लोकप्रशासन की विकास यात्रा प्रारम्भ हुई। 8 वर्ष तक अमेरिका के राष्ट्रपति तथा प्रिन्सटन विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर रहे श्री विल्सन की ख्याति किसी से सानी नहीं है। अपने लेख में विल्सन ने 'राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव' के विचार का समर्थन किया और इस बात की वकालत की कि राजनीतिक प्रश्न, प्रशासनिक प्रश्नों से भिन्न होते हैं। देश का संविधान बनाना उनके मत में आसान है, किन्तु उसे चलाना कठिन और उसे चलाने पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। विल्सन विधि के विस्तृत और व्यवस्थित क्रियान्वयन के रूप में लोक–प्रशासन की परिभाषा करते हैं और प्रशासन के विज्ञान पर बल देते हैं।

राजनीति और प्रशासन के सम्बन्धों पर विल्सन के विचार उलझे हुए मालूम पड़ते हैं क्योंकि कहीं–कहीं तो वे राजनीति और प्रशासन के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों की चर्चा करते हैं तो कहीं राजनीति और प्रशासन को अलग–अलग करके देखने की वकालत करते हैं। – विल्सन प्रशासन और जनमत के सम्बन्धों की भी चर्चा करते हैं और इस बात का परीक्षण करते हैं कि प्रशासन के संचालन में जनमत के किस भाग को लेना चाहिए। इसी प्रकार विल्सन तकनीकी रूप से शिक्षित सिविल सेवा की वकालत करते हैं। प्रशासन के अध्ययन की विधियों की चर्चा करते हुए विल्सन तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक पद्धतियों की उपादेयता स्पष्ट करते हैं तथा दार्शनिक पद्धति को अस्वीकार करते हैं। निःसन्देह विल्सन के पथ–प्रदर्शक योगदान के लिए लोक–प्रशासन सदैव उनका ऋणी रहेगा।

अध्याय – 8

हेनरी फेयोल
(HENRY FAYOL)

"फेयोल के योगदान का महत्त्व दो बातों से है। पहली बात प्रबन्ध की प्रक्रिया का उनका व्यवस्थित विश्लेषण और दूसरी उनकी उस विचार की दृढ़ वकालत कि प्रबन्ध को सिखाया जा सकता है और यह सिखाया जाना चाहिए। दोनों ही बातें 1908 में क्रान्तिकारी विचार थे और अब 1925 में भी कुछ हद तक स्वीकार किए जाते हैं।"

–ई.एफ.एल. ब्रेच

फ्रैंच उद्योगपति हेनरी फेयोल उन कुछेक प्रबन्धकीय (प्रशासनिक) विचारकों में से एक हैं जिन्होंने प्रबन्ध प्रक्रिया को व्यापक रूप से प्रभावित किया। शायद आधुनिक प्रबन्ध विचारधारा का वास्तविक जनक फ्रांसिसी उद्योगपति फेयोल ही है। फेयोल ही प्रथम विचारक थे जिन्होंने प्रबन्ध (प्रशासन) की सार्वभौमिकता को स्पष्ट किया तथा प्रबन्ध (प्रशासन) के सामान्य सिद्धान्तों की रचना की। फेयोल द्वारा प्रतिपादित प्रशासनिक सिद्धान्त लोक–प्रशासन के अन्य विद्वानों द्वारा स्वीकार किए गए और ये सिद्धान्त आज भी काफी हद तक सभी स्थानों और सभी प्रकार के संगठनों पर लागू किए जा सकते हैं। जो स्थान अंग्रेजी साहित्य में बेकन (Bacon) का है, वही स्थान प्रबन्ध के क्षेत्र में फेयोल का है।

हेनरी फेयोल का जन्म 1841 में फ्रांस में हुआ। खनन अभियान्त्रिकी में स्नातक उपाधि प्राप्त करने के बाद 19 वर्ष की आयु में अभियन्ता के रूप में एक कम्पनी मे कार्य करने लगे तथा 12 वर्षों तक यहाँ कार्य किया। 1885 में इसी कम्पनी जिसका नाम 'कोमेन्ट्री फोर शाम्बा उल्ट' था, के मुख्य अधिकारी नियुक्त किए गए। इस समय कम्पनी कंगाली के कगार पर थी। फेयोल के नेतृत्व में कम्पनी ने न केवल अपने घाटे पूरे किए अपितु एक लाभ अर्जक कम्पनी बन गई। उनकी यह सफलता एक रोमांचकारी घटना से कम नहीं थी। अपनी मृत्यु से 7 वर्ष पूर्व फेयोल रिटायर हो गए और 1925 तक, अपनी मृत्यु तक आपने अपना ध्यान प्रशासन के सिद्धान्तों के प्रयार–प्रसार में लगाया।

फेयोल काफी योग्य लेखक थे। उन्होंने भू–गर्भ शास्त्र, खनन अभियान्त्रिकी, प्रबन्ध, प्रशासन आदि विषयों पर काफी कुछ लिखा । लोक–प्रशासन में एक चिन्तक के रूप में ख्याती दिलाने वाली उनकी पुस्तक 'जनरल एण्ड इण्डस्ट्रियल मैनेजमेन्ट' थी जो 1916 में फ्रांसिसी भाषा में प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तक प्रबन्ध को उनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस पुस्तक का सर्वप्रथम अंग्रेजी अनुवाद 1929 में प्रकाशित किया गया। सन् 1949 में 'सर इसाक पिटमैन एण्ड सन्स' ने फेयोल की पुस्तक 'जनरल एण्ड इण्डस्ट्रियल मैनेजमेन्ट' (General and Industrial Management) शीर्षक से प्रकाशित की। "यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि वास्तविक 'प्रशासन' शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद 'प्रबन्ध' के रूप में किया गया न कि 'प्रशासन' के रूप में। यह उल्लेखनीय है कि 1916 में "Administration Indsutrialle et Generale" शीर्षक से प्रकाशित फ्रांसिसी भाषा की पुस्तक का 1929 में अनुवाद 'जनरल एण्ड इण्डस्ट्रियल मैनेजमेन्ट' (General and Industrial Administration) के रूप में किया गया था। फेयोल की कतिपय अन्य रचनाएँ (लेख) इस प्रकार हैं–

- Discourse on the General Principles of Administration (1908)
- The Reform of the Public Service (1918)

- The Industralization of the State (1919)
- Administrative Reforms of the Posts and Telegraphs (1921)
- The Theory of Administration in the State (1923)

हेनरी फेयोल का लोक प्रशासन या प्रबन्ध में योगदानः–

प्रशासन की सार्वभौमिकता (Universality of Administration)

फेयोल प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने प्रशासन (प्रबन्ध) की सार्वभौमिकता की वकालत की। उन्होंने प्रशासन के कुछ सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित किए और उनके सार्वभौमिक रूप से लागू करने की वकालत की। फेयोल प्रशासन की सार्वभौमिकता का दावा करते हुए लोक–प्रशासन और निजी प्रशासन के बीच में भेद को नकारते हैं। वे कहते हैं

'प्रशासन' शब्द को जो अर्थ मैंने दिया है और जो सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया गया है, प्रशासनिक विज्ञान के क्षेत्र को व्यापक बनाता है। इसमें केवल सार्वजनिक सेवाएँ ही शामिल नहीं हैं अपितु हर आकार, विवरण, स्वरूप और प्रयोजन के उद्यम भी शामिल हैं। सभी उद्यमों में नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय और नियन्त्रण (POCCoC) की आवश्यकता होती है और अपने कार्यों को सुचारु रूप से करने के लिए सभी को समान सामान्य सिद्धान्तों की जरुरत होती है। अब हमारे सामने बहुत से प्रशासनिक विज्ञान नहीं हैं सिर्फ एक है जिसको कि समान रूप से सार्वजनिक और निजी गतिविधियों में लागू किया जा सकता है।

उद्योग, राजनीति, धर्म, युद्ध सभी क्षेत्रों में प्रशासन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है । फेयोल का स्पष्ट रूप से मानना था कि नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय और नियन्त्रण वे आवश्यक तत्त्व हैं जो हर तरह के उद्यम में आवश्यक होते हैं, चाहे वह सार्वजनिक हों या निजी। इस प्रकार फेयोल जहाँ लोक–प्रशासन व निजी प्रशासन के भेद को दर किनार करते हैं वहीं प्रशासन की सार्वभौमिकता को स्पष्ट करते हैं। फेयोल ने उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों के कार्यों में प्रशासन की मात्रा इस प्रकार बताई–

कर्मचारी	प्रशासन कार्य
वर्कमैन	5%
फोरमैन	15%
शॉप मैनेजर	25%
विभागीय हैड	35%
प्लांट मैनेजर	40%
जनरल मैनेजर	50%

औद्योगिक क्रियाएँ तथा प्रशासनिक क्रियाएँ। (Industrial and Administrative Activities)

हेनरी फेयोल ने औद्योगिक क्रियाओं या गतिविधियों तथा प्रशासनिक क्रियाओं का वर्गीकरण

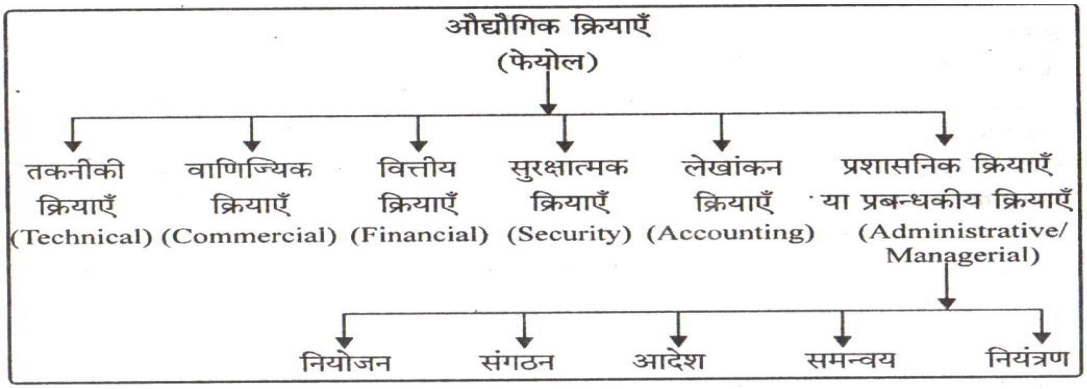

तकनीकी क्रियाएँ : फेयोल प्रथम समूह की क्रियाओं को तकनीकी क्रियाएँ कहते हैं। तकनीकी क्रियाओं में उत्पादन, विनिर्माण तथा अनुकूलन सम्बन्धी क्रियाओं को शामिल किया गया है और` संस्था के लक्ष्य प्राप्त करने के लिए ये गतिविधियाँ आवश्यक होती हैं।

वाणिज्यिक क्रियाएँ : उद्योग के लिए वाणिज्यिक क्रियाएँ भी उतना ही महत्त्व रखती हैं जितनी कि अन्य क्रियाएँ । वाणिज्यिक क्रियाओं में क्रय (Buying), विक्रय (Selling), तथा विनिमय (Exchange) सम्बन्धी क्रियाओं को शामिल किया गया है। बाजार की स्थिति, प्रतिस्पर्धा की प्रकृति, मूल्य विनियमन, दूर दृष्टिता आदि की जानकारी रखना औद्योगिक इकाई के लिए आवश्यक होता है।

वित्तीय क्रियाएँ : इनमें पूँजी की प्राप्ति और पूँजी का उपयुक्तम उपयोग सम्बन्धी क्रियाएँ शामिल की जा सकती हैं। पूँजी हर कार्य के लिए आवश्यक होती है। कोई भी औद्योगिक गतिविधि बिना पूँजी के संचालित नहीं की जा सकती। चाहे कच्चा माल खरीदना हो या फिर मशीन, चाहे कर्मचारियों के वेतन–भत्तों का भुगतान करना हो या उद्यम का विस्तार करना हो, बिना पूँजी के यह सब सम्भव नहीं है । अतः उद्यम की सफलता के लिए वित्तीय प्रबन्ध पर सर्वाधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

सुरक्षात्मक क्रियाएँ : सुरक्षा उद्यम की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। सुरक्षात्मक क्रियाओं में व्यक्तियों और सम्पत्ति की सुरक्षा शामिल है। संगठन में कार्यरत व्यक्तियों को यदि अपनी सुरक्षा का पूर्ण विश्वास हो तो वे संगठन में कुशलतापूर्वक कार्य करेंगें। असुरक्षापूर्ण वातावरण में कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः चोरी, आग, अतिवृष्टि तथा अन्य सामाजिक गड़बड़यिों जैसे–हड़ताल, तालाबन्दी, पत्थरबाजी आदि से व्यक्तियों तथा सम्पत्ति की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था आवश्यक है।

लेखांकन क्रियाएँ : लेखांकन क्रियाओं में स्टॉक परीक्षण, सन्तुलन–पत्र, लागते, आँकड़े आदि सम्बन्धी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। ये सभी लेखांकन सम्बन्धी क्रियाएँ संगठन के स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होती है। इसीलिए संगठन की लेखांकन गतिविधियों पर भी उतना ही ध्यान दिया जाए जितना कि तकनीकी, वाणिज्यिक, वित्तीय, सुरक्षात्मक और प्रशासनिक क्रियाओं पर दिया जाता है।

प्रशासनिक/प्रबन्धकीय क्रियाएँ : हेनरी फेयोल ने प्रशासनिक क्रियाओं (या प्रबन्धकीय क्रियाओं) को औद्योगिक क्रियाओं के अन्तिम समूह में रखा है। ये क्रियाएँ प्रशासन के तत्त्व कहलाती हैं।

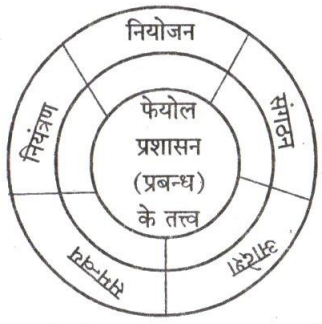

फेयोल का मत था कि प्रबन्ध करने का आशय नियोजन (पूर्वानुमान) करना, संगठन बनाना, आदेश देना, समन्वय स्थापित करना और नियन्त्रण रखना है। फेयोल ने इन पाँचों गतिविधियों को प्रशासन या प्रबन्ध के तत्त्व कहा है। जिनका वर्णन इस प्रकार है :–

'नियोजन (Planning) : फेयोल नियोजन तथा पूर्वानुमान को प्रशासन (प्रबन्ध) के प्रथम तत्त्व के रूप में पहचानते हैं। नियोजन का सर्वाधिक प्रभावी उपकरण कार्य की योजना' (Plan for Action) है। कार्य किस प्रकार किया जाएगा, किन चरणों में किया जाएगा, किन विधियों को काम में लिया जाएगा आदि का उल्लेख कार्ययोजना

में किया जाता है। कार्य योजना की सहायता से संसाधनों का अधिकतम उपयोग सम्भव है तथा संगठन के लक्ष्य प्राप्ति में यह सहायक होती है। फेयोल ने एक अच्छी कार्य की योजना के निम्न तत्त्वं बताएँ हैं एकता (Unity) • सत्तता (Continuity), लचीलापन (Flexibility) • संक्षिप्तता Precision)| कार्य की अच्छी योजना लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होती है और अनावश्यक गतिविधियों से बचाव करती है।

संगठन (Organization) : संगठन प्रबन्ध का दूसरा कार्य है। सरकारी अभिकरण या औद्योगिक इकाई को संगठित करने का अभिप्रायः होता है उसके संचालन के लिए कच्चे माल, उपकरण, पूँजी या वित्त, कर्मचारी आदि की व्यवस्था करना। संगठन में मानवीय तथा भौतिक पक्ष दोनों शामिल हैं।

इस प्रकार संगठन अनेक प्रबन्धकीय कार्य सम्पन्न करता है। फेयोल ने महाप्रबन्धक को कार्यों में सहायता देने के लिए स्टॉफ की नियुक्ति की भी सलाह दी है।

आदेश देना (Command) : आदेश द्वारा संगठन में कार्यरत व्यक्तियों से अधिकतम उत्पादन लिया जा सकता है। संगठन के संचालन के लिए आदेश का होना अति आवश्यक है। फेयोल के मत में आदेश देने की कला व्यक्तिगत गुणों और सामान्य सिद्धान्तों के ज्ञान पर निर्भर करती है। आदेश का सिद्धान्त संगठन की संरचना से जुड़ा है। आदेश देने वाले व्यक्ति में निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं, उसे कर्मचारियों के बारे में पूरी जानकारी हो। उसे अक्षम कर्मचारियों को हटा देना चाहिए। उसे एक अच्छा उदाहरण पेश करना चाहिए। संगठन का समय–समय पर अंकेक्षण करें। सम्मेलनों के माध्यम से अपने मुख्य सहायकों को नजदीक लाना चाहिए। विस्तृत विवरण में नहीं डूबना चाहिए। कार्मिकों के बीच एकता, ऊर्जा, पहल और विश्वास पैदा करने को लक्ष्य बनाना चाहिए।

समन्वय (Coordination) : फेयोल समन्वय को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि समन्वय प्रबन्ध का वह कार्य है जिसके माध्यम से संस्थान की विभिन्न गतिविधियों में तालमेल बिठाया जाता है ताकि कार्य सुगमतापूर्वक होता रहे तथा कोई बाधा पैदा न हो। संगठन की प्रत्येक इकाई द्वारा सम्पादित किए जाने वाले कार्यों में दोहराव और मतभेदों को दूर करने के लिए समन्वय की स्थापना आवश्यक हो जाती है । जिन संगठनों में समन्वय का अभाव होता है वहाँ संगठन के विभिन्न विभागों के बीच सहयोग का अभाव पाया जाता है। फेयोल सम्मेलनों और सम्पर्क अधिकारियों के माध्यम से संगठन में समन्वय स्थापना का सुझाव देते हैं।

नियन्त्रण (Control) : फेयोल नियन्त्रण को भी प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हैं। नियन्त्रण का अभिप्राय इस बात का सत्यापन करना है कि क्या उपक्रम की प्रत्येक क्रिया अपनाई गई योजनाओं, दिए गए आदेशों तथा स्थापितं सिद्धान्त के अनुसार हो रही है या नहीं। इसका उद्देश्य दुर्बलताओं और गलतियों को मालूम करना है जिससे समय पर उन्हें सुधारा जा सके तथा उसकी पुनरावृत्ति रोकी जा सके। फेयोल का सुझाव था कि नियन्त्रण संस्था में उचित समय पर स्थापित किया जाना चाहिए तथा उसके लिए समुचित दण्ड की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

प्रशासन के चौदह सिद्धान्त (Fourteen Principles of Administration) . हेनरी फेयोल का प्रशासन को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान उसके द्वारा प्रतिपादित प्रशासन (या प्रबन्ध) के चौदह सिद्धान्त हैं। फेयोल ने प्रशासन के निम्न 14 सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है

(1) कार्य का विभाजन (Division fo Work) : कार्य विभाजन का आशय है सम्पूर्ण कार्य को कुछ भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग का कार्य व्यक्तियों के एक विशिष्ट समूह या विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा किया जाए। इसका उद्देश्य समान प्रयत्नों की मात्रा से अधिक उत्पादन करना है और बेहतर तरीके से कार्य करना है। कार्य विभाजन से विशेषीकरण आता है और उसको अधिक दक्षता के साथ सम्पन्न कर पाते हैं।

(2) **प्राधिकार और उत्तरदायित्व (Authority and Responsibility) :** सत्ता या प्राधिकार को परिभाषित करते हए फेयोल कहते हैं कि सत्ता आदेश देने का अधिकार और उसे पालन करवाने की शक्ति होती है। यह संगठन के लिए

अति आवश्यक होता है। सत्ता औपचारिक भी हो सकती है और व्यक्तिगत भी। औपचारिक सत्ता पद से जुड़ी होती है और व्यक्तिगत सत्ता व्यक्तिगत गुणों के कारण होती है। संगठन में सत्ता और उत्तरदायित्व परस्पर घनिष्ट रूप से जुड़े होते हैं। बिना सत्ता के उत्तरदायित्व नहीं निभाए जा सकते और बिना उत्तरदायित्व के सत्ता का दुरुपयोग की सम्भावना बढ़ती है। सत्ता और उत्तरदायित्व में समानता होनी चाहिए। संगठन में सत्ता की चाह सभी रखते हैं पर प्रबन्धकों को चाहिए कि वे अपने संगठन में उत्तरदायित्व की भावना का संचार करें।

(3) **अनुशासन (Discipline) :** अनुशासन संगठन के लिए अत्यन्त आवश्यक शर्त है और बिना अनुशासन के कोई उद्यम खुशहाल नहीं हो सकता । अनुशासन किसी भी संस्था में संस्था और उसके कर्मचारियों के बीच हुए स्थाई समझौते के प्रति श्रद्धा और स्वीकृति है। यह समझौता औपचारिक या अलिखित हो सकता है। संस्था के उच्च अधिकारियों का दायित्व है कि वे संस्था में अनुशासन बनाए रखने पर ध्यान दें। प्रेक्षकों की नियुक्ति, स्पष्ट समझौते और दण्ड की व्यवस्था संस्था में अनुशासन स्थापना में सहायक होती है।

(4) **आदेश की एकता (Unity fo Command) :** आदेश की एकता सिद्धान्त का तात्पर्य है कि एक कर्मचारी को केवल एक ही उच्चाधिकारी द्वारा आदेश दिया जाना चाहिए या अधीनस्थ केवल अपने तुरन्त उच्चाधिकारी से ही आदेश ले । फेयोल कहते हैं कि यदि इस सिद्धान्त का उल्लंघन होता है तो सत्ता कमजोर हो जाती है, अनुशासन टूट जाता है, व्यवस्था बिगड़ती है और स्थायित्व को खतरा पहुँचता है। वस्तुतः कोई भी व्यक्ति दोहरे आदेशों के अधीन नहीं रह सकता।

(5) **निर्देश की एकता (Unity fo Direction) :** निर्देश की एकता का सिद्धान्त आदेश की एकता से भिन्न है। निर्देश की एकता का तात्पर्य फेयोल के अनुसार इस बात से है कि समान उद्देश्यों वाली क्रियाओं का संचालन एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए और कार्य की एक ही योजना होनी चाहिए। एक ही उद्देश्य वाली क्रियाओं को सम्पन्न करने का कार्य जब एक से अधिक व्यक्तियों को सौंप दिया जाए तो उनके बीच समन्वय की समस्या आती है और उसके क्रियान्वयन में बाधा पैदा होती है ।

(6) **व्यक्तिगत हितों का सामान्य हितों के अधीन होना :** यह सामान्य–सी बात है कि संस्था के हित व्यक्तिगत हितों से अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं क्योंकि संस्था की खुशहाली में ही व्यक्तियों की खुशहाली निहित है। फेयोल सुझाव देते हैं कि व्यक्ति को संस्था के हितों को प्राथमिकता देनी चाहिए और अपने हितों को संस्था के हितों के अधीन रखना चाहिए। संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करना ही कर्मचारी का ध्येय होना चाहिए। संस्था के हितों को भुलाकर यदि व्यक्ति अपने–अपने हितों की पूर्ति में लग जाए तो संस्था में हित–संघर्ष शुरु हो जाएगा और यह स्थिति संस्था के लिए नुकसानदायक होती है।

(7) **कर्मचारियों को पारिश्रमिक (Remuneration) :** कर्मचारियों द्वारा संस्था को प्रदान की गई सेवा के बदले में उन्हें पारिश्रमिक दिया जाता है। पारिश्रमिक की दरें कई बातों पर निर्भर करती हैं। नियोक्ता की इच्छा, कर्मचारी की योग्यता, व्यवसाय की आर्थिक स्थिति आदि। पारिश्रमिक व्यवस्था बिना पक्षपात के हो और यह कर्मचारी को संतोष प्रदान करने वाली होनी चाहिए। पारिश्रमिक इतना अवश्य होना चाहिए कि कर्मचारी अपने तथा अपने परिवार का पालन–पोषण कर सके और दो–जून की रोटी पा सके । यदि ऐसा नही होगा तो वे विद्रोही हो जाऐंगे व हड़ताल, तालाबन्दी का सहारा लेंगें।

(8) **केन्द्रीयकरण (Centralisation) :** फेयोल के अनुसार प्रत्येक वह कार्य जो अधीनस्थों के महत्त्व को बढ़ाता है विकेन्द्रीयकरण है और जो इसे घटाता है वह केन्द्रीयकरण है। केन्द्रीयकरण व्यवस्था में संगठन की सत्ता उच्च स्तर पर केन्द्रीत रहती है और समस्त निर्णय उच्च स्तर पर लिए जाते हैं। इससे अधीनस्थों का महत्त्व घटता है। संगठन के केन्द्रीयकरण की मात्रा परिस्थितियों और सम्बन्धित लोगों की योग्यताओं के अनुसार बदलती रहती है। .

(9) **सोपान–श्रृंखला (Scalar Chain) :** सोपान–श्रृंखला संगठन में उच्चतम स्तर से निम्नतम स्तर तक फैली सत्ता की मात्रा है। इस व्यवस्था में प्रत्येक अधीनस्थ का एक तुरन्त उच्चाधिकारी होता है और इस उच्च अधिकारी का अपना एक तुरन्त उच्च अधिकारी होता है और यह संगठन के उच्चतम स्तर तक चलता है। कोई भी व्यक्ति इस श्रृंखला से बाहर नहीं होता है। सोपान–श्रृंखला या पदसोपान के कई लाभ होते हैं– ये सत्ता की श्रृंखला होती है, संचार, निर्णयन, प्रत्यायोजन, समन्वय आदि में उपयोगी होती है। परन्तु इस व्यवस्था का सबसे बड़ा अवगुण कार्यों में देरी या लालफीताशाही है। फेयोल इस समस्या को दूर करने के लिए 'गैंग–प्लैंक' के उपयोग का सुझाव देते हैं जिसके तहत दो समस्तरीय अधिकारी सीधे ही आपस में संचार स्थापित कर सकते हैं। जिसे निम्न चित्रानुसार समझा जा सकता है।

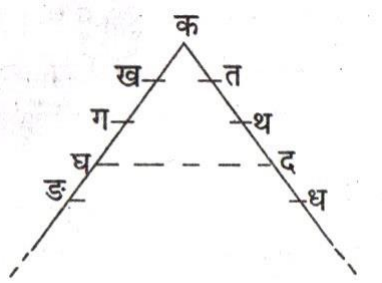

फेयोल का 'गैंग-प्लैंक'

(10) **व्यवस्था (Order) :** फेयोल के मत में व्यवस्था का सिद्धान्त मनुष्यों और वस्तुओं दोनों पर लागू होता है । व्यवस्था दो प्रकार की हो सकती है। भौतिक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु का एक निर्धारित स्थान होता है और प्रत्येक वस्तु अपने निर्धारित स्थान पर होती है। इसके अलावा सामाजिक व्यवस्था से आशय है सही स्थान पर सही व्यक्ति का होना। फेयोल 'व्यवस्था' और 'व्यवस्था के आभास' में भेद करते हैं।

(11) **समता (Equity) :** फेयोल अनुसार प्रबन्धकों का यह दायित्व है कि वे संगठन में समता की भावना का विकास करें। संगठन का प्रत्येक कार्मिक न्याय, दया और पक्षपात रहित व्यवहार की आकांक्षा रखता है। सभी के प्रति समान व्यवहार किया जाना चाहिए ताकि कार्मिकों को कभी भी इस बात की चिन्ता नहीं हो कि उसके प्रति पक्षपातपूर्ण कार्यवाही की जा रही है।

(12) **कर्मचारियों के कार्यकाल का स्थायित्व (Stability of Tenure) :** संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकाल में पर्याप्त स्थायित्व होना चाहिए। फेयोल के मत में स्थाई किन्तु मध्यम प्रतिभा वाला प्रबन्धक उच्च प्रतिभा परन्तु अस्थाई प्रबन्धक से बेहतर परिणाम दे सकता है। जहाँ तक सम्भव हो व्यक्ति को एक पद से तब तक नहीं हटाया जाना चाहिए जब तक कि ऐसा करने का कोई ठोस कारण न हो।

(13) **पहलपन (Initiative) :** फेयोल के मत में पहलपन का आशय है एक कार्य योजना को सोचने की शक्ति ओर उसे क्रियान्वित करना और तत्पश्चात् उसकी सफलता को सुनिश्चित करना। परन्तु पहल को सत्ता और अनुशासन की सीमाओं के भीतर ही प्रोत्साहित करना चाहिए।

(14) **सहयोग की भावना (Esprit de Corps) :** एक संगठन को अपने कार्मिकों के बीच सामंजस्य की भावना का विकास करने पर जोर देना चाहिए। इसके लिए प्रबन्धकों को दो कार्य करने चाहिए। एक, कर्मचारियों को विभाजित न होने दिया जाए और दूसरा, मौखिक संचार का अधिक उपयोग किया जाए।

फेयोल कहते हैं कि चाहे वाणिज्य हो, उद्योग हो, राजनीति हो, धर्म हो या युद्ध हो सभी जगह प्रशासन की आवश्यकता पड़ती है और प्रशासन का संचालन सामान्य सिद्धान्तों द्वारा किया जा सकता है।

प्रबन्धक में क्या–क्या गुण हों? (Attributes of Managers)

(i) शारीरिक गुण : • स्वास्थ्य (Health) • जोश (Vigour) • उपस्थिति(Appearance)

(ii) मानसिक गुण : • समझने और सीखने की क्षमता (Ability to Understand and Learm)• निर्णय (Judgement) • मानसिक शक्ति (Mental Vigour) • अनुकूलनशीलता (Adaptibility)

(iii) नैतिक गुण : दृढ़ता (Firmness)• उत्तरदायित्व स्वीकारने की इच्छा (Willingness to Accept Responsibility)

(iv): सामान्य शिक्षा : • विभिन्न मामलों की जानकारी

(v) विशिष्ट ज्ञान : इसमें प्रबन्धक का उस कार्य के बारे में विशिष्ट ज्ञान शामिल है जो कि उसे सौंपा जाता है, चाहे यह किसी भी प्रकृति का क्यों न हो।

(vi) अनुभव : कार्य करने से पैदा होने वाला ज्ञान अनुभव में शामिल है। अपने अनुभव के आधार पर फेयोल निम्न निष्कर्ष निकालते हैं। • एक श्रमिक के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण योग्यता उसकी तकनीकी योग्यता होती है। • जैसे–जैसे पदसोपान में ऊपर बढ़ा जाता है, वैसे–वैसे प्रशासनिक योग्यताओं का महत्त्व बढ़ता जाता है और तकनीकी योग्यताओं का महत्त्व घटता जाता है। प्रशासक की सबसे महत्त्वपूर्ण योग्यता उसकी प्रशासनिक क्षमताएँ होती हैं।

प्रबन्धकीय प्रशिक्षण (Administrative Training) हेनरी फेयोल प्रबन्धकीय प्रशिक्षण पर जोर देते हैं। वे कहते हैं कि प्रबन्ध की प्राथमिक शिक्षा प्राथमिक स्कूलों में, कुछ व्यापक शिक्षा प्राथमिक–उत्तर स्कूलों में तथा प्रबन्ध की उच्चतर और विकसित शिक्षा की व्यवस्था उच्च शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा प्रदान की जानी चाहिए। फेयोल प्रशिक्षण को सतत् प्रक्रिया मानते हैं और विश्वास करते हैं कि संगठन में प्रत्येक उच्चाधिकारी अपने तुरन्त अधीनस्थ के शिक्षक के समान होता है। फेयोल के मत में प्रबन्ध या प्रशासन के शिक्षण–प्रशिक्षण से प्रबन्धक अपने कार्यों को अधिक सुगमतापूर्वक संचालित कर पाएंगे।

फेयोल का मूल्यांकन (Evaluation):– 'क्लासिक्स इन मैनेजमेन्ट' हारवुड मैरिल द्वारा सम्पादित पुस्तक 'क्लासिक्स इन मैनेजमेन्ट' में फेयोल को प्रबन्ध साहित्य का फ्रांसिसी बेकन' कहा गया। यद्यपि फेयोल के विचारों की आलोचना यह कह कर की जाती है कि उनके सिद्धान्तों में 'अतिव्यापन' (Overlapping) पाया जाता है। पीटर ड्रकर कहते हैं संगठन निर्माण की सबसे बुरी गलतियों में एक थी, एक जीवन्त कार्य–व्यापार पर 'आदर्श' या 'सार्वभौमिक' संगठन का एक यांत्रिक प्रतिमान जबरदस्ती लागू कर दिया गया।

संरचनावादियों का मुख्य आरोप यह है कि हेनरी फेयोल ने अपने प्रकार्यात्मक वर्गीकरण में संरचनात्मक आयाम को नजर अन्दाज किया है। प्रकार्यवाद की यह कह कर आलोचना की जाती है कि यह रचना और तर्क की दृष्टि से कम सही है। फेयोल ने खनन संस्था के अध्ययन के आधार पर अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किए थे। पर इनको आज के जटिल और व्यापक संगठनों पर लागू करना कम व्यवहारिक लगता है।

शास्त्रीय प्रशासनिक विचारधारा के आलोचक चेस्टर बरनार्ड तथा हरबर्ट साइमन मानते हैं कि प्रबन्धकीय संगठनों को हम केवल औपचारिक संगठन संरचना से सम्बन्धित सिद्धान्तों (नियमों) द्वारा ही नहीं समझ सकते। साइमन तो इन सिद्धान्तों (प्रनियमों) को 'कहावतों' तक की संज्ञा देते हैं। फेयोल ने प्रशासन के जो चौदह सिद्धान्त बताएँ हैं उनमें आन्तरिक असंगतियाँ पाई जाती है। उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद फेयोल के विचार काफी मौलिक हैं और आज भी उनकी प्रासंगिकता है। वास्तव में, फेयोल ने प्रबन्ध अनुशासन को सम्मानजनक स्थिति में पहुँचाया। वे प्रथम प्रबन्धकीय विचारक हैं जिनकों एक ऐसे व्यक्ति के रूप में याद किया जाता रहेगा जिन्होंने प्रबन्ध की प्रक्रिया का सुपाच्य और व्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत किया है । डी. एस. पुघ, डी. जे. हिकसन तथा सी. आर. हिनिंग्स लिखते हैं

फेयोल का इस क्षेत्र में गर्विला स्थान इस कारण अधिक नहीं हैं कि उन्होंने यह बताया कि वे कौन से सिद्धान्त हैं जिनसे प्रबन्ध किया जाए, बल्कि उनकी यह परिभाषा है कि प्रबन्ध क्या है । वे प्रबन्धकीय क्रियाओं का सैद्धान्तिक विश्लेषण करने वाले पहले ज्ञात प्रतिपादक हैं, जिनके विश्लेषण पर आधी शताब्दी तक आलोचनात्मक विचार–विमर्श होता रहा। ऐसे बहुत ही कम लेखक होंगे जो इस विश्लेषण से प्रभावित न हुए हों और उनके पाँच तत्त्व (POCCoC) प्रबन्धकों को अवधारणाओं की एक प्रणाली प्रदान करते हैं। फेयोल के सिद्धान्त आज भी उतने ही वैध हैं जितने कि उस समय थे जब इनका प्रतिपादन किया गया था। यह दुर्भाग्य की बात है कि फेयोल के कार्यों का अंग्रेजी में अनुवाद बहुत बाद में हुआ। उनके द्वारा बताए गए सिद्धान्तों से अन्य विचारकों के सिद्धान्त काफी मेल खाते हैं जबकि फेयोल ने इसका प्रतिपादन बहुत पहले ही कर दिया था।

- अर्नेस्ट डेल का मत है कि फेयोल द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को व्यापक रूप से नियोजन और कम्पनी संगठन संरचना को विकसित करने में लागू किया जा रहा है। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त 'आदेश की एकता', 'निर्देश की एकता' तथा 'प्राधिकार और उत्तरदायित्व' के सिद्धान्त सर्वाधिक उपयोग में आने वाले सिद्धान्त हैं। यहाँ तक कि फेयोल ने 'पदसोपान' में देरी से बचने के लिए 'गैंग–प्लैंक' का सुझाव भी दिया। पीटर ड्रकर कहते हैं कि फेयोल का प्रकार्यात्मक संगठन एक छोटे व्यापार, विशेषतः एक छोटे विनिर्माण व्यापार, की संरचना करने का सर्वश्रेष्ट तरीका है। हेनरी आल्बर्स मानते हैं कि फेयोल 'मानवीय कारक' की महत्ता से अनजान नहीं थे। फेयोल स्वयं लिखते हैं प्रशासन के सिद्धान्तों की संख्या की कोई सीमा नहीं है। प्रत्येक प्रशासनिक नियम या उपाय जो संगठन में मानवीय भाग को मजबूत करता है याह इसके कार्य को सुगम बनाता है, तब तक सिद्धान्तों के बीच बना रहता है जब तक कि अनुभव द्वारा हम उसे इस महत्त्वपूर्ण स्थिति के योग्य मानते हैं। बर्तराम ग्रासं अनुसार फेयोल यह भी स्वीकार करते हैं कि उनके सिद्धान्तों को दृढ़ नियम (Rigid Rules) नहीं समझा जाना चाहिए। वे मानते थे कि उनके सूत्रीकरण को और अधिक उन्नत किया जा सकता है। वे यह भी स्वीकारते थे कि उनके ये सिद्धान्त बिना किसी संशोधन के विभिन्न संगठनात्मक स्थिति में लागू किए जा सकने वाले 'सर्वश्रेष्ठ तरीको' का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। स्थिति के अनुसार उनमें आवश्यक संशोधन किए जा सकते हैं।

अध्याय – 9

फ्रेडरिक विन्सलो टेलर

(FREDERIC WINSLOW TAYLOR)

"वैज्ञानिक प्रबन्ध यह मान कर चलता है कि प्रत्येक कार्य को करने का एक श्रेष्ठ तरीका होता है और उस तरीके को सदैव कुछ नियमों में निर्मित किया जा सकता है, और इस तरह आप अपने ज्ञान को पुरानी अव्यवस्था की स्थिति से दूर संगठित ज्ञान के रूप में प्राप्त कर सकते हैं।" –फ्रेडरिक टेलर

फ्रेडरिक विन्सलो टेलर ने अन्य वचिारकों की तुलना में लोक–प्रशासन को सर्वाधिक प्रभावति किया है। प्रबन्ध का हर विद्यार्थी टेलर के नाम से परिचित है। टेलर वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन के अग्रणी प्रतिपादक थे। वैज्ञानिक प्रबन्ध को दूसरी औद्योगिक क्रान्ति के रूप में अभिहीत किया गया है। टेलर ने उद्योगों की समस्याओं को सुलझाने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने की वकालत की और प्रबन्ध को विज्ञान के रूप में परिभाषित किया। प्रबन्ध की वैज्ञानिकता पर जोर देने तथा प्रबन्ध को वैज्ञानिक आधार पर संचालित करना ही वैज्ञानिक प्रबन्ध का सार है।

फ्रेडरिक विन्सलो टेलर का जन्म 20 मार्च, 1856 को संयुक्त राज्य अमेरिका के पेनिसिलवेनिया के जर्मन टाउन शहर में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा फ्रांस तथा जर्मनी के स्कूलों में हुई । फिलिप एक्सीटर अकादमी में आपने बाद में प्रवेश लिया । परन्तु अधिक मेहनत करने से आपकी नेत्र–ज्योति कमजोर हो गई और उन्होंने मात्र 18 वर्ष की आयु में फिलाडेल्फिया के हाइड्रोलिक वर्क्स में काम करना प्रारम्भ किया तथा इसके बाद 1878 में वे 'मिडवेल स्टील कम्पनी' में श्रमिक बन गए। बाद में न्यूजर्सी के हॉबोकन स्टीवेन्सन प्रौद्योगिक संस्थान में यान्त्रिक अभियान्त्रिकी में उपाधि प्राप्त की और मिडवेल स्टील कम्पनी के मुख्य अभियन्ता बन गए। इसके बाद टेलर ने कई स्थानों पर कार्य किया। 1901 के पश्चात् अपनी मृत्यु सन् 1915 तक टेलर ने अपना समय वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीकों के शोध में लगाया। दक्षता के प्रति उनका लगाव असीमित था और काम करने की दक्षता अपार थी। उनका अवश्विसनीय सक्रिय जीवन एक उल्लेखनीय चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

टेलर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अपने व्यावहारिक अनुभव के आधार पर अनेक पुस्तकें लिखीं और कई लेख प्रकाशित करवाए। 'प्रिंसिपल्स ऑफ साइन्टीफिक मैनेजमेन्ट' (Principles of Scientfiic Management) उनकी उत्कृष्ट कृति मानी जाती है। इसका प्रकाशन 1911 में हुआ था और अब तक प्रकाशित अन्य किसी भी पुस्तक ने प्रबन्ध व्यवहार को इतना प्रभावति नहीं किया जितना की इसने किया। टेलर की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ इस प्रकार हैं– (पुस्तकें और लेख)

Shop Management (1910), The Principles of Scientfiic Management (1911), Concrete Cost (Co-Author) (1912), Notes on Belting (1894) (लेख), A Piece Rate System (1895) (लेख), Shop Management (1903) (लेख), On the Art of Cutting Metals (1906) (लेख), The Gospel of Efficiency (1911) (लेख)

टेलर का 1895 में एक लेख 'ए पीस रेट सिस्टम' अमेरिका की यान्त्रिक इंजीनियरिंग सोसाइटी के समक्ष प्रस्तुत किया गया। टेलर ने इसमें सुझाव दिया कि जहाँ भी वभिेदात्मक पुरस्कार व्यवस्था को अपनाया जाता है वहाँ की मजदूरी–भुगतान व्यवस्था में कुछ सिद्धान्तों का ध्यान रखना चाहिए। 1903 में प्रस्तुत अपने लेख 'शॉप मैनेजमेन्ट' (Shop Management) में टेलर ने प्रबन्ध की अपनी अवधारणा को निम्न बिन्दुओं में स्पष्ट किया (i) अच्छे प्रबन्ध का

उद्देश्य ऊँची मजदूरी का भुगतान और कम इकाई उत्पादन लागत होता है। (ii) इसके लिए अपनी समस्याओं के समाधान के लिए प्रबन्ध को शोध और प्रयोग की वैज्ञानिक वधियों को काम में लेना होता है। (iii) कार्य की दशाओं का प्रमापीकरण किया जाना चाहिए तथा वैज्ञानिक आधार पर कर्मचारियों का चयन किया जाए। (iv) अच्छे कार्य सम्पादन के लिए कर्मचारियों को समुचित प्रशिक्षण दिया जाए ताकि उनके कौशल में वृद्धि हो सके। (v) वैज्ञानिक आधार पर श्रमिकों व प्रबन्ध के बीच सहयोग की भावना का वकिास किया जाना चाहिए। टेलर के मत में 'प्रबन्ध' यह जानने की कला है कि आप दूसरों से क्या करवाना चाहते हैं और इसके बाद यह देखना कि किस प्रकार वे इसे श्रेष्ठ तरीके और मितव्ययता के साथ करते हैं। अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ साइनटिफिक मैनेजमेन्ट' में टेलर 'अपवाद द्वारा प्रबन्ध सिद्धान्त' (Principle of Management by Exception) का प्रतिपादन करते हैं। टेलर का मत था कि दिन–प्रतिदिन के कार्य के सम्पादन के लिए प्रबन्ध द्वारा कुछ नीतियों, नियमों, वधियों, प्रक्रियाओं तथा प्रमापों को लागू कर देना चाहिए। इसके बाद प्रबन्ध को अपना ध्यान केवल उन्हीं मामलों पर रखना चाहिए जहाँ प्रमापों के अनुरूप कार्य नहीं हुआ है, या निर्धारित मात्रा से अधिक काम हुआ है । प्रबन्ध को केवल वहीं ध्यान देना चाहिए जहाँ निर्धारित नीतियों और प्रक्रियाओं का अनुसरण नहीं किया जा रहा है या नहीं किया जा सकता। प्रबन्ध को केवल अपवादस्वरूप ही दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप करना चाहिए। यही टेलर का 'अपवाद द्वारा प्रबन्ध' का सिद्धान्त है। – अपने लेख 'दी आर्ट ऑफ कटिंग मैटल्स से भी टेलर को काफी ख्याति प्राप्त हुई। यह लेख टेलर के आनुभावकि प्रयोगों पर आधारित था। वैज्ञानिक प्रबन्ध पर उनके वचिार 'शॉप मैनेजमेन्ट' तथा 'प्रिंसिपल ऑफ साइन्टिफिक मैनेजमेन्ट' में मिलते हैं।

टेलर के प्रयोग (Taylor's Experiments):– मिडवेल स्टील कम्पनी और बैथलेहम स्टील कम्पनी में कार्य करते समय टेलर ने अनेक प्रयोग किए। इन प्रयोगों तथा अध्ययनों की ववेिचना टेलर की पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ साइन्टिफिक मैनेजमेन्ट' में स्थान–स्थान पर की गई है। टेलर के इन प्रयोगों का प्रबन्ध जगत् पर काफी प्रभाव पड़ा। टेलर के महत्त्वपूर्ण प्रयोग इस प्रकार हैं फावड़े के प्रयोग (Shovelling Experiments) : टेलर ने बैथलेहम स्टील कम्पनी में देखा कि श्रमिक अलग–अलग तरह के फावड़ों का प्रयोग करते थे तथा श्रमिकों की कार्यक्षमता भी काफी कम थी। टेलर ने इन प्रयोगों के आधार पर सुझाव दिया कि वभिन्न प्रदार्थों को हटाने के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के फावड़ों का प्रयोग किया जाना चाहिए। उनके मत में हल्के पदाथों को हटाने के लिए भारी फावड़ों का प्रयोग करना चाहिए और भारी पदार्थों को हटाने के लिए हल्के फावड़ों का प्रयोग करना चाहिए। टेलर ने इन प्रयोगों द्वारा श्रमिकों के प्रशिक्षण, कार्यों के प्रमापीकरण, कार्यों की समय–समय पर जाँच और व्यवस्थित संचार प्रणाली पर भी जोर दिया। टेलर की नई योजना तथा पुरानी योजना की तुलना इस प्रकार है।

फावड़ा प्रयोग के नतीजे

		पुरानी योजना	प्रयोग आधारित योजना
1.	श्रमिको की संख्या	400–600	140
2.	प्रति व्यक्ति औसत आमदनी	1.15 डॉलर	1.18 डॉलर
3.	प्रति टन माल हटाने की औसत लागत	0.072 डॉलर	0.033 डॉलर

टेलर ने फावड़ा प्रयोग से यह भी नतीजा प्रस्तुत किया कि इस योजना से दिन–प्रतिदिन औसत उत्पादन 16 टन से बढ़कर 59 टन हो जाता है।

धातु कटाई प्रयोग (Metal Cutting Experiments) : टेलर ने मिडवेल स्टील कम्पनी में धातु की कटाई सम्बन्धी प्रयोग किए। अपने लेख 'आर्ट ऑफ कटिंग मैटल्स' में टेलर ने अपने परिणामों की चर्चा की। टेलर का निष्कर्ष था कि धातु की कटाई के समय कई बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। जैसे धातु की कटाई करने वाली मशीन, धातु

काटते समय धातु को ठण्डा रखना, मशीन की उचित गति, नियोजन आदि। धातु कटाई प्रयोगों ने अमेरिकी औद्योगिक जगत् को काफी प्रभावति किया।

कच्चे लोहे को हटाने सम्बन्धी प्रयोग (Pig Iron Handling Experiments) : बैथलेहम स्टील कम्पनी में ये प्रयोग किए गए। कच्चे लोहे को हटाने सम्बन्धी अपने प्रयोगों से उन्होंने सर्वोत्तम वधि वकिसित की जिसके उपयोग से व्यक्ति अब 47 1/2 टन सामग्री उठा सकता था जो पहले सिर्फ 12 1/2 टन थी। इन्हीं प्रयोगों के माध्यम से टेलर ने श्रमिकों के वैज्ञानिक चयन, उनके प्रशिक्षण, कार्य के दौरान उनको वश्रिाम देने की वकालत की।

वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientfiic Management):– टेलर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान वैज्ञानिक प्रबन्ध के जनक के रूप में स्वीकार किया गया है। टेलर के अनुसार प्रबन्ध यह जानने की कला है कि आप दूसरे लोगों से क्या चाहते हैं और तत्पश्चात् यह देखना कि किस प्रकार कम खर्च पर अधिक दक्षता से यह कार्य किया जाता है। टेलर अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध यह मानकर चलता है कि दोनों– मालिक और श्रमिक के वास्तवकि हित समान एवं एक हैं। क्योंकि मालिकों की सम्पन्नता लम्बे समय तक बिना श्रमिकों की सम्पन्नता चल नहीं सकती। इसलिए यह सम्भव है कि श्रमिक जो वह चाहता है– ऊँची मजदूरी दी जानी चाहिए एवं मालिक जो वह चाहता है– निम्न श्रम लागत दी जानी चाहिए।

यह सही है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग लुई बैन्डीस ने 1910 में किया था फिर भी टेलर वैज्ञानिक प्रबन्ध के जनक माने जाते हैं। 1911 में प्रकाशित उनकी पुस्तक के शीर्षक ने वैज्ञानिक प्रबन्ध को लोकप्रिय बनाया।

'मानसिक क्रान्ति' (Mental Revolution) का विचार टेलर का मौलिक योगदान है। टेलर मानसिक क्रान्ति को वैज्ञानिक प्रबन्ध का मूल तत्त्व मानते हैं। मानसिक क्रान्ति से आशय श्रमिकों और मालिकों की मानसिकता में परिवर्तन से है। सामान्यतया मालिक श्रमिकों से अधिक काम चाहते हैं और श्रमिक मालिकों से अधिक मजदूरी । इससे दोनों एक–दूसरे को अपना विरोधी समझते हैं तथा परस्पर अविश्वास का वातावरण रहता है। टेलर इस प्रकार की मानसिकता में परिवर्तन का आग्रह करते हैं। इसे ही वे मानसिक क्रान्ति कहते हैं।

टेलर कहते हैं कि वैज्ञानिक प्रबन्ध श्रमिकों की अपने कर्तव्यों, अपने काम ओर अपने साथी श्रमिकों के प्रति पूर्ण मानसिक क्रान्ति में निहित है। इसी प्रकार प्रबन्ध की अपने कर्मचारियों और उनकी समस्याओं के प्रति पूर्ण मानसिक क्रान्ति आवश्यक है। यही महान् मानिसक क्रान्ति वैज्ञानिक प्रबन्ध का सार है। टेलर कहते हैं उद्योग के दोनों पक्षों की अविश्वास पर आधारित विचारधारा के स्थान पर टेलर की मानसिक क्रान्ति की संकल्पना हितों में एकता, पारस्परिक विश्वास, आत्मीयता तथा सहयोग आदि पर जोर देती है। टेलर कहते हैं वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत दोनों पक्षों (प्रबन्धक तथा श्रमिक) के मानसिक दृष्टिकोण में एक बड़ी क्रान्ति आती है, जिसके अन्तर्गत दोनों ही पक्ष अन्य महत्त्वपूर्ण मामलों के समान 'आधिक्य' (Surplus) के विभाजन से अपनी निगाह दूर रखते हैं और दोनों साथ मिलकर इस 'आधिक्य' का आकार ओर अधिक बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं ताकि यह 'आधिक्य' इतना बढ़ जाएँ कि इसका बँटवारा कैसे होना चाहिए के लिए झगड़ना ही न पड़े। टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के इन सिद्धान्तों की संक्षेप में ववेिचना इस प्रकार है वज्ञिान, न कि अंगूठे का नियम : टेलर अपने वैज्ञानिक प्रबन्ध में वज्ञिान के वकिास पर सर्वाधिक जोर देते हैं। वे आग्रह करते हैं कि संगठन में प्रत्येक कार्य वैज्ञानिक विधि से किया जाना चाहिए न कि 'अंगूठे के नियम' अर्थात् अनुभव और 'ट्रॉयल व एरर' विधि से। वे श्रमिकों का वैज्ञानिक आधार पर चयन और वैज्ञानिक आधार पर ही कार्य का आवंटन का आग्रह करते हैं। वे कहते हैं वैज्ञानिक प्रबन्ध मान कर चलता है कि हर कार्य करने का एक सर्वोत्तम तरीका होता है और यह सर्वोत्तम तरीका सदैव सिद्धान्तों में ढाला जा सकता है। प्रबन्ध के विज्ञान को विकसित करने के लिए विज्ञान के विकास को टेलर आवश्यक मानते हैं।

सामंजस्य न कि संघर्ष : टेलर उद्यम के कर्मचारियों और प्रबन्ध पक्ष के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों की वकालत करते हैं। चूँकि उद्यम के दो आधार स्तम्भों के रूप में उसकी सफलता तभी सम्भव होती है जब दोनों पक्षों के बीच

संघर्षपूर्ण सम्बन्धों के स्थान पर सामंजस्यपूर्ण और मैत्री सम्बन्ध हों। टेलर मानसिक क्रान्ति के माध्यम से ऐसी परिकल्पना करते है।

सहयोग न कि व्यक्तिवाद: उद्यम के कर्मचारी यदि अपने–अपने व्यक्तिगत प्रयासों पर ही ध्यान दें, और अपने साथियों के साथ कोई सामंजस्य न रखें तो उद्यम की सफलता संदिग्ध रहती है। 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता' के समान ही व्यक्तिवादी प्रयत्नों से संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। संगठन के कर्मचारियों में सहयोग या सहकारिता की भावना होना अपरिहार्य है। कम से कम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन यह उद्देश्य केवल सहकारी प्रयासों से ही सम्भव है न कि व्यक्तिवादी प्रयासों से।

सीमित उत्पादन के स्थान पर अधिकतम उत्पादन : टेलर का मत है कि चूँकि वैज्ञानिक प्रबन्ध का उद्देश्य श्रमिकों और मालिकों दोनों की खुशहाली है। यह तभी सम्भव है जब उद्यम अधिकतम उत्पादन करे। यदि संगठन सीमित या प्रतिबन्धित उत्पादन के स्थान पर अधिकतम उत्पादन करते हैं तो इसका लाभ केवल मालिकों को ही नहीं अपितु श्रमिकों को भी मिलेगा। अतः टेलर सीमित उत्पादन के स्थान पर अधिकतम उत्पादन का आग्रह करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का उसकी अधिकतम दक्षता और समृद्धि तक वकिास वैज्ञानिक प्रबन्ध संगठन के प्रत्येक व्यक्ति का अधिकतम दक्षता (कार्यकुशलता) और समृद्धि तक विकास करने का पक्ष लेता है। ऐसा श्रमिकों के वैज्ञानिक आधार पर चयन, उनको प्रशिक्षण तथा कार्य के वैज्ञानिक आवंटन से सम्भव है। साथ ही वैज्ञानिक प्रबन्ध श्रमिकों की समृद्धि का भी पक्ष लेता है और उन्हें ऊँची मजदूरी देने की बात करता है, क्योंकि मालिकों की समृद्धि भी तभी सम्भव है जबकि श्रमिक समृद्ध हो।

टेलर अपने वैज्ञानिक प्रबन्ध सिद्धान्त में कार्य करने के श्रेष्ठ या सर्वोत्तम तरीके हेतू 'कार्य–वश्लिेषण' पर बल देते हैं। टेलर ने कार्य के सर्वोत्तम तरीके के निर्धारण हेतु समय अध्ययन', 'गति अध्ययन' और 'थकान अध्ययन' तकनीकों का उल्लेख किया है।

समय अध्ययन (Time Study) : टेलर ने समय अध्ययन का प्रयोग किसी कार्य को करने में लगने वाले समय को निर्धारित करने के लिए किया है। टेलर ने इस तकनीक का प्रयोग श्रमिकों के औसत दिन के कार्य (A fair days work) निर्धारण के लिए किया है। जिस कार्य या गतिवर्धि में न्यूनतम समय लगता है, वही श्रेष्ठ होती है।

गति अध्ययन (Motion Study) : गति अध्ययन से श्रमिकों द्वारा किए जा रहे कार्य की वभिन्न गतियों का निरीक्षण किया जाता है तथा अनावश्यक गतियों को हटाकर कार्य की श्रेष्ठ वधि निर्धारित की जा सकती है।

थकान अध्ययन (Fatigue Study) : कार्य करने से थकान आना स्वाभाविक है। जब श्रमिक थकान महसूस करते हैं तो वे अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं कर पाते। इसके लिए टेलर विश्राम का समय निर्धारित करने की सलाह देते हैं।

टेलर अपने अध्ययनों तथा प्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष निकालते हैं कि नियोजन को कार्य से पृथक किया जाना चाहिए। टेलर का सुझाव था कि नियोजन का काम पर्यवेक्षकों को सौंपा जाना चाहिए और श्रमिकों को केवल अपने कार्य पर ही अधिक केन्द्रित होना चाहिए। वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा के अन्य महत्त्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं।

श्रमिकों का वैज्ञानिक चयन एवं प्रशिक्षण : श्रमिक अधिकतम कार्यकुशलता के साथ कार्य कर सकें, इसके लिए टेलर श्रमिकों के वैज्ञानिक आधार पर चयन की वकालत करते हैं। टेलर श्रमिकों के वैज्ञानिक आधार पर चयन के साथ–साथ उनके कौशल को वकिसित करने के लिए प्रशिक्षण को भी आवश्यक मानते हैं। ऐसा श्रमिक उद्यम के लिए अधिकतम क्षमता के साथ अपना योगदान दे सकता है।

वैज्ञानिक आधार पर कार्य का आवंटन: टेलर श्रमिकों के बीच कार्य के आवंटन के लिए वैज्ञानिक आधार अपनाने का सुझाव देते हैं। प्रत्येक श्रमिक की योग्यता और रुचि को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक तरीके से कार्य का आवंटन किया जाना चाहिए। इससे सोल्डिरिंग (Soldiering) (काम से बचना) कम होगा।

प्रमापीकरण (मानकीकरण) : टेलर औजारों, यन्त्रों, मशीनों आदि के प्रमापीकरण को आवश्यक मानते हैं। प्रत्येक कार्य के प्रमाप निर्धारित कर दिए जाने तथा यन्त्रों और सामग्री का वैज्ञानिक आधार पर चयन से न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन सम्भव है।

प्ररेणात्मक मजदूरी प्रणाली (Incentive Wages System): टेलर श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि के लिए प्रोत्साहक मजदूरी प्रणाली लागू करने का सुझाव देते हैं। जिससे श्रमिक उस कार्य को करने को प्रवृत होगें। इसलिए टेलर 'विभेदात्मक मजदूरी दरों' (Dffierential Wage Rates) को लागू करने की वकालत करते हैं। इस प्रणाली में व्यक्ति के कार्य सम्पादन के आधार पर मजदूरी दी जाती है। सही समय पर सही तरीके से कार्य सम्पादन पर अधिक मजदूरी तथा कार्य समय पर नहीं हो तो न्यून मजदूरी से ही श्रमिक को सन्तुष्ट होना होगा। टेलर ने अनुभव किया कि जब एक प्राकृतिक रूप से ऊर्जावान व्यक्ति, एक आलसी व्यक्ति के साथ काम करता है तो इस स्थिति के तर्क का कोई उत्तर ही नहीं दिया जा सकता मैं कड़ी मेहनत क्यों करूँ जब मेरा आलसी साथी भी मेरे बराबर ही मजदूरी पा लेता है और वह काम भी मुझसे आधा ही करता है? इस समस्या का समाधान 'विभेदात्मक मजदूरी' प्रणाली है।

टेलर अनुसार श्रमिक को अधिक कार्य करने से अधिक पैसा मिलेगा तो वह निःसंकोच अधिक कार्य करने को प्रवृत होगा। एक डच श्रमिक "शमिट' (Schmidt) के साथ बातचीत मे टेलर पाता है कि वह श्रमिक अधिक कार्य करके 1.15 डॉलर प्रतिदिन की जगह 1.85 डॉलर प्रतिदिन प्राप्त करना चाहता है।

कार्य की अच्छी दशाएँ : टेलर श्रमिकों को कार्य की अच्छी और सन्तोषजनक दशाएँ प्रदान करने का सुझाव देते हैं। उनके श्रम घण्टों में कमी करके उन्हें कार्य से जी चुराने के स्थान पर निरन्तर कार्य करवानी सम्भव होगा। **कार्यकुशल लागत–लेखा प्रणाली :** कुशल लागत लेखा प्रणाली से संगठन के अनावश्यक खर्चो से बचा जा सकता है।

प्रकार्यात्मक–फौरमैनशिप Functional formanship: टेलर की यह अवधारणा कार्यों के वशिषीकरण पर आधारित है। इस प्रणाली में श्रमिक के कार्यों को निर्देर्शित करने का दायित्व आठ व्यक्तियों (अधिकारियों) का होता है। इन आठ में से चार व्यक्ति नियोजन से सम्बन्धित और चार श्रमिक के कार्यों से प्रत्यक्षतः जुड़े होते हैं जो श्रमिक के कार्य को निर्देशित करते हैं। ये व्यक्ति हैं (i) कार्यक्रम क्लर्क (Routine Clerk) : कार्यक्रम क्लर्क का कार्य दैनिक कार्यक्रम तैयार करना तथा उससे सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करना है। (ii) निर्देशन कार्ड क्लर्क (Instruction Card Clerk) : इस क्लर्क का कार्य निर्देश पत्र तैयार करना है और उन्हें गैंग बॉस तक पहुँचाना है। (iii) समय एवं लागत क्लर्क (Time and Cost Clerk) : इसका कार्य विभिन्न क्रियाओं में लगने वाले समय और लागतों के सम्बन्ध में सूचनाएँ रखना है।। (iv) अनुशासक (Disciplinair) : संगठन में अनुशासन बनाए रखना और विवादों का निपटारा करना इसका कार्य होता है। (v) गैंग बॉस (Gang Boss) : इसका कार्य प्रत्येक श्रमिक से निर्धारित योजना के अनुसार कार्य लेना, श्रमिकों को कार्य की आवश्यक सूचना व मार्गदर्शन व सामग्री प्रदान करना होता है। (vi) स्पीड बॉस (Speed Boss) : यह श्रमिकों की कार्य की गति पर निगरानी रखता है। इस बात का ध्यान रखना कि प्रत्येक कार्य सही समय पर हो, इसका दायित्व है। (vii) रिपेयर बॉस (Repair Boss) : इसका कार्य मशीनों तथा औजारों की टूट–फूट की मरम्मत करना है। (viii) निरीक्षक (Inspector) : यह अपने उद्यम में उत्पादित वस्तुओं की किस्म और गुण आदि की जाँच करता है तथा देखता है कि वस्तुएँ वक्रिय योग्य हैं या नहीं। टेलर की इस सम्पूर्ण योजना को निम्न रेखाचित्र द्वारा प्रर्दशित किया जा सकता।

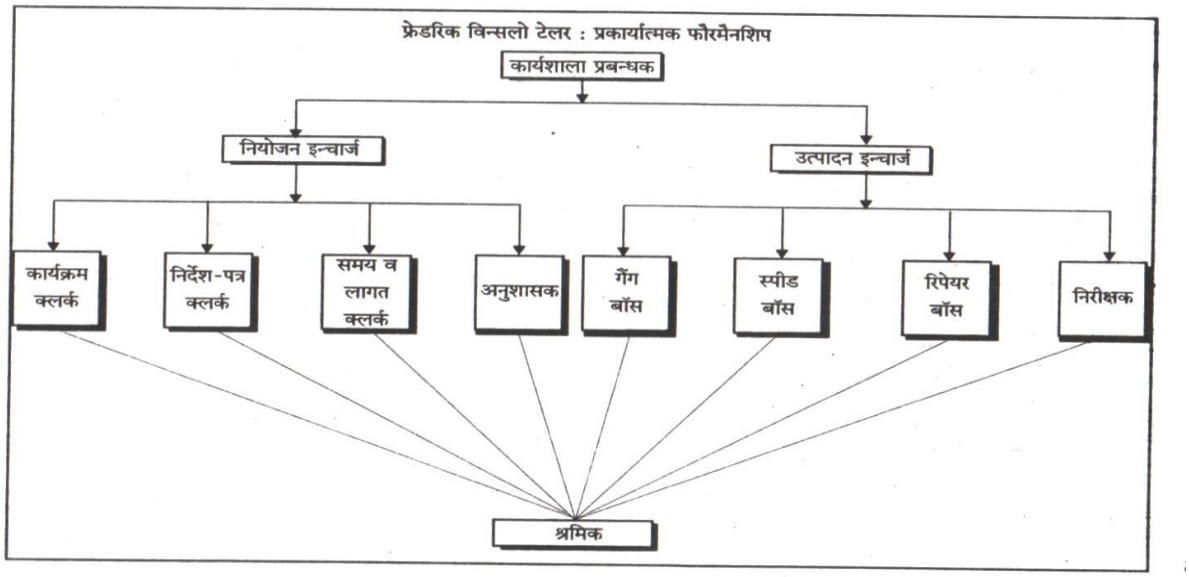

इस प्रकार टेलर द्वारा वर्णित उपर्युक्त उपाय वैज्ञानिक प्रबन्ध के सहायक तत्त्व हैं न कि स्वयं वैज्ञानिक प्रबन्ध । मानसिक क्रान्ति ही वैज्ञानिक प्रबन्ध का मूल दर्शन है। वे अधिकतम उत्पादन पर जोर देते हैं तथा सोल्डरिंग अर्थात् 'काम से बचने की प्रवृत्ति' की आलोचना करते

टेलर और फेयोल : तुलना (Taylor and Fayol : Comparison) फ्रेडरिक विन्सलो टेलर तथा हेनरी फेयोल दोनों ही प्रसिद्ध प्रशासनिक चिन्तक हैं । प्रायः टेलर और फेयोल की तुलना की जाती है। इन दोनों ही विद्वानों के वचिारों में जहाँ एक ओर कुछ समानताएँ हैं तो दूसरी ओर कई अन्तर भी देखने को मिलते हैं।

टेलर और फेयोल के विचारों में असमानताएँ : टेलर ने जहाँ वैज्ञानिक प्रबन्ध के उन विशिष्ट सिद्धान्तों का विकास किया जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध उत्पादन की प्रक्रिया से है, वहीं फेयोल ने प्रशासन के सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो कि सार्वभौमिक रूप से पाए जा सकते हैं। टेलर 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' के जनक माने जाते हैं जबकि फेयोल 'प्रशासन की सार्वभौमिकता' पर बल देने वाले विचारक के रूप में । उत्पादन चूँकि एक तकनीकी पहलू है अतः इससे सम्बन्धित होने के कारण टेलर के विचार 'विशिष्टता' लिए है जबकि फेयोल 'सामान्य प्रशासन के सिद्धान्तों की विवेचना करते हैं। जहाँ टेलर का मुख्य ध्यान इस बात पर था कि किस प्रकार उद्योगों में कार्यरत कर्मचारियों का तकनीकी कौशल विकसित किया जाए, वहीं फेयोल की मुख्य रुचि प्रशासनिक योग्यताओं को बढ़ाने से सम्बधित थी। टेलर ने अपने अध्ययन में अधिक ध्यान उद्योगों में निचले स्तरों (कार्मिकों) पर दिया फेयोल का अधिक ध्यान संगठन के उच्च स्तरों (प्रबन्धक) पर था। टेलर की मुख्य रुचि न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन' करने में थी जबकि फेयोल प्रशासन की सार्वभौमिकता को स्वीकार करते हुए प्रशासनिक योग्यताओं में वृद्धि करने से अधिक जुड़े थे। टेलर की 'मानसिक क्रान्ति' जैसा विचार फेयोल के मन में नहीं था।

उपर्युक्त असमानताओं के बावजूद टेलर और फेयोल के विचार एक–दूसरे के विरोधी न होकर एक–दूसरे के पूरक थे। लिंडस उर्विक भी यह मानते हैं जहाँ टेलर 'वैज्ञानिक प्रबन्ध के जनक' माने जाते हैं वहीं फेयोल 'आधुनिक प्रबन्ध वचिारधारा' के जनक । दोनों ने प्रबन्धकीय समस्याओं का व्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन किया। दोनों ही चिन्तकों ने प्रशासन में 'मानवीय तत्त्व' को महत्त्व दिया। दोनों ही विचारकों को कार्य का अच्छा अनुभव था और उनके सिद्धान्त उनके व्यवहारिक अनुभव पर ही आधारित थे। दोनों ही विचारकों ने संगठनात्मक समस्याओं पर वचिार किए तथा उनके समाधान के उपाय भी सुझाए । निःसन्देह टेलर और फेयोल दोनों अग्रणी थे तथा प्रशासनिक चिन्तन सदैव उनका ऋणी रहेगा।

टेलर का मूल्यांकन (Evaluation) : वैज्ञानिक प्रबन्ध के जनक के रूप में टेलर प्रबन्ध साहित्य में अमर हो गए हैं। परन्तु आलोचकों के मत में टेलर ने अपना सारा ध्यान कारखाना स्तर पर ही लगाया है और उच्च प्रबन्ध के सुधार पर कुछ नहीं कहा है। टेलर के इस सिद्धान्त की आम व्यक्तियों, ट्रेड यूनियनों और यहाँ तक प्रबन्धकों ने भी आलोचना की है। प्रोफेसर होक्सी ने अमेरिका में अपनी रिपोर्ट, जो उन्होंने औद्योगिक सम्बन्धों पर आयोग को दी थी, में वैज्ञानिक प्रबन्ध उपागम को उत्पादन के केवल यान्त्रिक पहलुओं से सम्बन्धित होने व मानवीय पहलुओं की उपेक्षा का आरोप लगाया है। टेलर उच्च प्रशिक्षण को आवश्यक मानते थे अतः वे लोग टेलर के वरुिद्ध हो गए जो बिना प्रशिक्षण के ही पदोन्नति द्वारा ऊँचे पदों को प्राप्त करना चाहते थे। प्रबन्धकों से नहीं पटने के कारण ही टेलर को मिडवैल और बैथलेहम कम्पनियों से त्याग–पत्र देना पड़ा।

शेल्डन, फोलेट, मेयो, ड्रकर आदि विचारक टेलर के सिद्धान्त की आलोचना करते हैं क्योंकि वह निर्वेयक्तिता पर ज्यादा ध्यान देता है और मानवीय पहलू को कम करके आँकता है। मेयो के हॉर्थोन प्रयोगों द्वारा टेलरवाद का खण्डन किया गया। साइमन और मार्च वैज्ञानिक प्रबन्ध को 'शारीरिक संगठनात्मक सिद्धान्त' की संज्ञा देते हैं।

आलोचनाओं के बावजूद टेलर की विचारधारा लम्बे समय तक सम्पूर्ण विश्व पर छायी रही और आज भी उनकी न्यूनाधिक उपयोगिता विद्यमान है। बर्टराम ग्रॉस के मत में उनके वैज्ञानिक प्रबन्ध का लोक प्रशासन में बढ़ते सुधार और मितव्ययता आन्दोलन पर गहरा प्रभाव है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध शास्त्रीय संगठन सिद्धान्त का एक भाग था। यह उन संगठनात्मक संरचनाओं में लागू होती थी जहाँ नियन्त्रण का क्षेत्र सीमित था, प्राधिकार केन्द्रित थे तथा प्राधिकार का एक ऐसा प्रतिमान था जो ऊपर से नीचे की ओर (From Top to Down) प्रवाहित होता हो। प्रणाली के क्रियान्वयन की सम्पूर्ण जिम्मेदारी प्रबन्ध में पूरी तरह से निहित थी। संगठनात्मक विचारधारा के आगे के विकास में इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। इसने लिआनाई व्हाइट, लूथर गुलिक तथा लिंडल उर्विक को प्रभावति किया। 1930 के आस–पास लोकप्रिय हुए औपचारिक संगठन विचारधारा (Formal Organization Theory) प्रत्यक्ष रूप से वैज्ञानिक प्रबन्ध से जुड़ी थी। यह दक्षता और उत्पादकता पर बहुत ज्यादा जोर देता है। इसकी सबसे बड़ी विफलता यह है कि इसने उत्पादन में मानवीय तत्त्व, अनौपचारिक संगठन के महत्त्व तथा संगठनात्मक पर्यावरण के प्रभाव की अनदेखी की है।

किन्तु अब भी कुछ संगठन वैज्ञानिक प्रबन्ध सिद्धान्तों के आधार पर चलते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लोक प्रशासन को एक अकादमिक वषिय के रूप में स्थापित करने में वैज्ञानिक प्रबन्ध ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, वशिषकर संयुक्त राज्य अमेरिका में। पीटर एफ ड्रकर लिखते हैं अमरिकी लोक प्रशासन में वैज्ञानिक प्रबन्ध का व्यापक प्रभाव पड़ा था। इस प्रबन्ध का केन्द्रीकृत और विकेन्द्रीकृत प्रभाव पड़ा। अमरिकी शासन संरचना विकेन्द्रीकृत थी। अमेरिका में लोक प्रशासन के अध्ययन ने वैज्ञानिक प्रबन्ध के केन्द्रीकृत धागों पर ज्यादा जोर दिया। उसके बाद वैज्ञानिक प्रबन्ध विपरीत दिशा में मुड़ा और इसने विकेन्द्रीकृत धागों के विकास (Cultivation) पर जोर दिया। डवाइट वाल्डो के अनुसार सन् 1915 में टेलर की मृत्यु के पश्चात् उसकी विचारधारा के अनेक बिन्दुओं को अस्वीकार भी कर दिया गया है, किन्तु 'टेलरवाद' की भावना, उसकी प्रतिभा तथा उसके द्वारा प्रदान की गई 'मानसिक क्रान्ति' एवं 'दर्शन' एक शाश्वत वस्तु है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. साइंटिफिक मैनेजमैंट सिद्धांत की व्याख्या करे।
2. प्रकार्यात्मक फौरमैनशिप की विवेचना करो।
3. फेयोल के चौदह सिद्धांतो का वर्णन करे।
4. वुडरो विल्सन के विचारों का प्रशासन में योगदान बताएं।
5. फयोल की औधोगिक और प्रशासनिक क्रियाओं का वर्णन करें।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव के जनक कौन थे।
2. विल्सन की दो पुस्तकों के नाम लिखों।
3. फेयोल ने कितनी औयोगिक क्रियाएँ बताई हैं।
4. फेयोल ने प्रबन्धक के कौन–कौन से गुण बताएं है।
5. आर्ट ऑफ कटिंग मैटल किसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत है।
6. सोल्डिरिंग का अर्थ बताएं।

अध्याय – 10

लूथर एच. गुलिक
(LUTHER H. GULICK)

संगठनों के प्रबन्ध की 'शास्त्रीय' विचारधारा के श्रेष्ठ प्रतिपादकों और उसे लोकप्रिय बनाने वालों में लूथर गुलिक तथा लिंडल उर्विक का नाम सबसे महत्त्वपूर्ण है जिनके कार्यों का उपयोग, इस प्रवृत्ति के संस्थापकों की तुलना में, विषय का परिचय कराने में अधिक किया जाता है।

लोक–प्रशासन के अनुशासन के रूप में विकास में योगदान करने वाले प्रमुख विचारकों में एक नाम लूथर गुलिक का है। गुलिक लोक–प्रशासन में शास्त्रीय विचारक माने जाते हैं। 1937 में लिंडल उर्विक के साथ मिलकर उन्होंने 'पेपर्स ऑन दी साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन लिखी। यह लोक–प्रशासन के विकास में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थी।

लूथर हैल्सी गुलिक का जन्म सन् 1892 में जापान में हुआ था। 28 वर्ष की आयु में आपने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। 1939 में गुलिक ने डॉक्टर ऑफ लिटरेचर और 1954 में डॉक्टर ऑफ लॉ–लेबर की उपाधियाँ प्राप्त की। गुलिक कई वर्षों तक विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर रहे। वे प्रशासनिक प्रबन्ध पर राष्ट्रपतीय समिति के भी सदस्य रहे।

लूथर गुलिक ने कई पुस्तकें लिखीं। उनकी कुछ पुस्तकें तथा लेख इस प्रकार हैं–

• Papers on the Science of Administration (1937) (with Urvick) • Administrative Reflections from World War-II (1948) • The Metropolitan Problems and American Ideas (1962) • 'Next Steps in Public Administration' • 'Who Are we to Believe' (1957) (लेख) • 'The Dynamics of Public Administration : Today as Guidelines for the Future' (1983) (लेख) • "Time and Public Administration' (1987) (लेख)

लूथर गुलिक औपचारिक संगठन विचारधारा के समर्थक थे। लोक–प्रशासन को लूथर गुलिक का योगदान अनेक क्षेत्रों में रहा। गुलिक के योगदान को निम्न बिन्दुओं में जान सकते हैं।

संगठन के सिद्धान्त (Principles of Organization):– गुलिक शास्त्रीय विचारक माने जाते हैं। उन का विश्वास था कि संगठन के कुछ सामान्य सिद्धान्त होते हैं और इन सिद्धान्तों को लागू करके संगठन की प्रभावशीलता में वृद्धि की जा सकती है। शास्त्रीय विचारकों का मुख्य ध्यान 'मितव्ययता' और 'दक्षता' पर था। उनका मत है कि प्रशासन के सामान्य सिद्धान्तों द्वारा अधिकतम मितव्ययता और दक्षता प्राप्त की जा सकती है। लूथर गुलिक हेनरी फेयोल द्वारा प्रतिपादित प्रशासन के चौदह सिद्धान्तों से काफी प्रभावित थे। गुलिक ने संगठन के निम्न 10 सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है

(1) कार्य का विभाजन या विशेषीकरण : संगठन के 10 सिद्धान्तों में गुलिक इस सिद्धान्त को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। उनका मत है कि कार्य का विभाजन केवल संगठन का आधार ही नहीं बल्कि कारण है। अन्य शास्त्रीय विचारक भी कार्य विभाजन को संगठन का सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त मानते हैं। कार्य के विभाजन का आशय है कि कार्य को सर्वप्रथम छोटे–छोटे भागों में बाँटा जाए और प्रत्येक भाग का कार्य विशिष्ट व्यक्ति ही करे। कार्य का विभाजन कर दिए जाने से न केवल कार्य को करना आसान होगा अपितु विशेषीकरण का लाभ भी उठाया जा सकेगा क्योंकि

एक–सा कार्य करते रहने से कर्मचारी उस कार्य में विशेष दक्षता हासिल कर लेता है। (2) विभागीय संगठनों के आधार : गुलिक इसे संगठन का दूसरा सिद्धान्त मानते है तथा इस पर काफी कुछ लिखा। उन्होंने विभागीयकरण के 4 आधारों की विवेचना की है। • पर्पज या प्रयोजन, • प्रोसेस या प्रक्रिया, • पर्सन या व्यक्ति, तथा • प्लेस या स्थान। गुलिक का विभागीयकरण का सिद्धान्त 'चार–पी' (Four 'P') सिद्धान्त के नाम से अधिक लोकप्रिय है। (3) पदसोपान द्वारा समन्वय : समन्वय संगठन के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों में से एक है। गुलिक भी समन्वय स्थापना के कई तरीके बताते हैं जिनमें से एक है पदसोपान द्वारा समन्वय । पदसोपान संगठन का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है और यह संगठन में समन्वय स्थापना में सहायक होता है। (4) सचेत समन्वय गुलिक संगठन में जान–बूझकर, सचेत प्रक्रिया द्वारा समन्वय स्थापना को संगठन का चौथा सिद्धान्त बताते हैं। वस्तुतः समन्वय स्थापना के लिए सचेत प्रयास किए जाने आवश्यक है। (5) समितियों द्वारा समन्वय : गुलिक इसे संगठन का पाँचवां सिद्धान्त बताते हैं। समन्वय की स्थापना के लिए समितियों का गठन भी किया जा सकता है। इनके माध्यम से औपचारिक व प्रभावी समन्वय स्थापना की जा सकती है। (6) विकेन्द्रीकरण : विकेन्द्रीकरण से आशय है कि प्रशासनिक सत्ता का एक स्थान पर केन्द्रित न होकर संगठन के विभिन्नि स्तरों पर निहित होना । विकेन्द्रीकरण को गुलिक संगठन का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त मानते हैं क्योंकि इसका सम्बन्ध कार्य–विभाजन से होता है। (7) आदेश की एकता : आदेश की एकता या एकिक आदेश सिद्धान्त से आशय है कि प्रशासनिक संगठन में किसी कर्मचारी को अपने तुरन्त उच्च अधिकारी से ही आदेश ग्रहण करने चाहिए और केवल उसी के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। यह सिद्धान्त 'एक स्वामी एक अधीनस्थ' के विचार पर जोर देता है। (8) स्टाफ एवं सूत्र : गुलिक स्टाफ एवं सूत्र को संगठन का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त बताते हैं। स्टाफ परामर्शदात्री कार्य सम्पन्न करता है और सूत्र नीति बनाता है, निर्णय लेता है और उन्हें क्रियान्वित करता है। (9) प्रत्यायोजन: जब अधिकारी के पास कार्य भार बढ़ जाता है या कार्य का तकनीकी पक्ष जटिल हो जाता है तो वह सत्ता सहित कार्यों को हस्तान्तरित करता है। उसे ही प्रत्यायोजन कहा जाता है। (10) नियन्त्रण का क्षेत्र: गुलिक नियन्त्रण के क्षेत्र को संगठन का अन्तिम सिद्धान्त बताते हैं। इसका आशय यह होता है कि एक प्रशासनिक संगठन में एक उच्चाधिकारी अपने अधीन कितने कर्मचारियों के कार्यों का प्रभावशाली रूप से नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण कर सकता है। यह अवधारणा ग्रेक्यूनास के 'ध्यान के विस्तार क्षेत्र' के सिद्धान्त से सम्बन्धित है। इस प्रकार अन्य शास्त्रीय विचारकों की तरह गुलिक भी संगठन के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए उन्हें संगठन में लागू करने का आग्रह करते हैं।

पोस्डकॉर्ब विचार/(POSDCORB View):– पोस्डकॉर्ब विचार के माध्यम से लूथर गुलिक ने कार्यपालिका के कार्यों को गिनाया है। पोस्डकॉर्ब 7 अक्षरों से मिलकर बना शब्द है, जिसका प्रत्येक अक्षर एक विशिष्ट कार्य को दर्शाता है। इन सातों क्रियाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है। **P-'प्लानिंग या नियोजन'** नियोजन या आयोजन कार्यपालिका का प्रथम कार्य है या प्रशासन की प्रथम गतिविधि और सबसे महत्वपूर्ण उपाय है। नियोजन का लक्ष्य निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न गतिविधियों की पहचान करना है तथा साथ ही उस क्रम की भी पहचान करना है या प्राथमिकताएँ तय करनी हैं ताकि हम अपने निर्धारित लक्ष्यों तक प्रभावशाली रूप से पहुँच सकें। नियोजन का उद्देश्य संगठन के मानवीय तथा भौतिक साधनों का सही अनुमान लगाना है और उन साधनों की खोज करना है ताकि अधिकतम मितव्ययता और न्यूनतम खर्चे पर दक्ष परिणाम प्राप्त हो सकें। हेनरी फेयोल जो कि गुलिक के समान शास्त्रीय विचारक हैं, नियोजन को प्रथम प्रशासनिक क्रिया मानते हैं। **O-'ऑर्गेनाइजिंग या संगठन करना'** कार्यपालिका का दूसरा कार्य है। प्रशासन की गतिविधियों का नियोजन कर लेने के बाद हमें प्रशासन की संरचना के बारे में ध्यान रखना पड़ता है अर्थात् संगठन की स्थापना करनी पड़ती है ताकि इन गतिविधियों को लागू किया जा सके तथा संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके । संगठन की स्थापना करने के लिए सत्ता की व्यवस्था की जाती है। सत्ता ही संगठन का हृदय होती है। बिना संगठन के प्रशासन अपना कोई भी लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता। गुलिक के अनुसार, "सत्ता की औपचारिक संरचना को संगठन कहते हैं जिसके माध्यम से कार्य की उपशाखाओं को प्रबन्धित, सुनिश्चित तथा समन्वित किया जाता है ताकि निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।"

S-'स्टाफिंग' या स्टाफ रखने से आशय संगठन के गतिशील पहलू से है। स्टाफिंग कार्मिक प्रशासन के सभी आयामों से जुड़ा होता है। कर्मचारियों की भर्ती करना, उसकी नियुक्ति, पदोन्नति, वेतन, अनुशासन, सेवानिवृत्ति आदि ऐसे कार्य हैं जिनका कि प्रबन्धकों को ध्यान रखना पड़ता है। चूंकि किसी भी संगठन की कार्यकुशलता उसके कार्मिकों की कार्यकुशलता से जुड़ी होती है इसलिए कार्मिक प्रशासन पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए । अभिप्रेरणा जो कि कार्मिक प्रशासन का एक अति महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है, को शास्त्रीय विचारकों ने प्रायः नजर अन्दाज ही किया है। **D-'डायरेक्टिंग या निर्देशन'** का आशय है प्रबन्धकों द्वारा प्रशासन की विभिन्न गतिविधियों को करने के लिए अधीनस्थों को आदेश–निर्देश देने से है । यह मुख्य कार्यपालिका का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है कि वह अपने अधीनस्थों को कार्य के दौरान निर्देशित करे और उन्हें आवश्यक आदेश दे ताकि कार्यों को प्रभावी ढंग से पूर्ण किया जा सके तथा लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर बढ़ा जा सके। **CO-'कॉ–आर्डिनेटिंग या समन्वय स्थापित करना'** भी कार्यपालिका का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। समन्वय से जहाँ कार्यों में दोहराव व टकराव को रोका जा सकता है वहीं कार्य को व्यवस्थित रूप से सम्पन्न करने के लिए समन्वय आवश्यक है। अधिकांश शास्त्रीय विचारकों ने समन्वय को एक महत्त्वपूर्ण गतिविधि के रूप में पहचाना है। **R-रिर्पोटिंग या रिपोर्ट देना** गुलिक के अनुसार कार्यपालिका का छठा कार्य है। संगठन में क्या गतिविधियाँ चल रही हैं, कौन, किस प्रकार कार्य कर रहा है, संगठन में क्या समस्याएँ हैं आदि समस्त बातों की जानकारी रिपोर्ट के माध्यम से मिलती है। रिपोर्ट के माध्यम से ही प्रबन्धक संगठन की स्थिति और समस्याओं को जान पाते हैं और उनका सुधारने का कार्य शुरु करते हैं। **B-'बजटिंग या बजट बनाना'** कार्यपालिका का गुलिक के मत में सातवाँ कार्य है। इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन से है। प्रशासन और वित्त चूँकि शरीर और छाया की भाँति जुड़े हुए हैं अतः वित्तीय प्रशासन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। इसमें बजट बनाना, वित्तीय प्रक्रियाएँ, लेखापालन, अंकेक्षण आदि गतिविधियाँ सम्मिलित हैं।

इस प्रकार लूथर गुलिक के शब्दों में 'पोस्डकॉर्ब' में कार्यपालिका की गतिविधियों को समेट लिया। यद्यपि इसमें कार्यपालिका के कई अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य छूट गए हैं।

विभागीयकरण के आधार (Bases fo Departmentalization):– विभागों के गठन के आधार क्या हो? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लूथर गुलिक ने विभागीयकरण के 4 आधारों (चार–पी) का उल्लेख किया है।

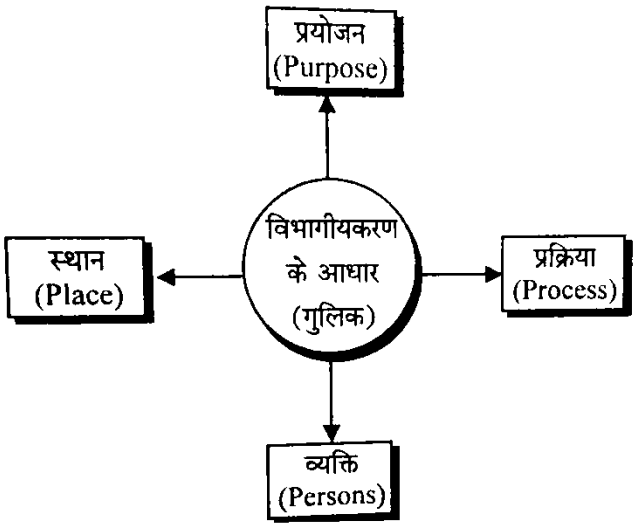

गुलिक के विभागीयकरण के आधार

'पर्पज या प्रयोजन' गुलिक के अनुसार विभागीयकरण का प्रथम आधार है। यहाँ संगठन .को सर्वप्रथम अपने मुख्य कार्यों और लक्ष्यों की पहचान करनी होती है और फिर प्रत्येक कार्य के लिए पृथक् विभाग की स्थापना की जाती है। जैसे– चिकित्सा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए चिकित्सालय, शिक्षा के लिए स्कूल और कॉलेज आदि होते हैं। गुलिक

के मत में उद्देश्य से समन्वय की स्थापना आसानी से और कम खर्च पर हो जाती है। परन्तु यह विशेषीकरण के विरुद्ध अधिक है।

प्रोसेस या प्रक्रिया विभागीयकरण का दूसरा आधार है। इस आधार पर एक समान प्रक्रिया का अनुसरण करने वाले व्यक्ति एक ही विभाग के अधीन रखे जाते हैं चाहे उनके प्रयोजन भिन्न–भिन्न क्यों न हों। यहाँ प्रक्रिया से तात्पर्य कार्य करने के तकनीकी कौशल से है। इस आधार पर लाभ यह है कि इसमें विशेषीकरण का लाभ लिया जा सकता है। परन्तु इसका एक प्रमुख दोष यह है कि इससे समन्वय स्थापना की प्रक्रिया में बाधा आती है।

पर्सन या व्यक्ति विभागीयकरण का तीसरा आधार है। इसका आशय यह है कि एक विशिष्ट विभाग व्यक्तियों के एक विशिष्ट समूह की सेवा करेगा। इस प्रकार एक ही समूह की सेवा करने तथा देखभाल करने से कार्यों में विशेषीकरण बढ़ता है और सेवा किए जाने वाले समूह को सुविधाएँ आसानी से मिल जाती हैं। परन्तु इसका नुकसान यह है कि चूँकि लोगों के समूह भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं अतः सभी के लिए अलग–अलग विभागों की स्थापना करना महँगा कार्य होगा।

'प्लेस या स्थान' को गुलिक विभागीयकरण का अन्तिम आधार बताते हैं। इसमें एक क्षेत्र–विशेष में किए जा रहे सभी कार्यों को जोड़ दिया जाता है और उनका एक विभाग बना दिया जाता है। इस प्रकार बनाए गए विभागों से उस क्षेत्र–विशेष का विकास सम्भव हो जाता है जिसके लिए विभाग की स्थापना की गई है। पर यह आधार क्षेत्रीयता और संकीर्णता को बढ़ावा दे सकता है।

मुख्यालय–क्षेत्रीय कार्यालय सम्बन्ध (Headquarter- Field office Relations):– गुलिक ने हैडक्वाटर्स और फील्ड ऑफिसेज के बीच सम्बन्धों के 3 प्रतिमानों का उल्लेख किया है (i) सभी अंगुलियाँ (All Fingers) (ii) छोटी भुजाएँ–लम्बी अंगुलियाँ (Short Arms & Long Fingers) (iii) लम्बी भुजाएँ–छोटी अंगुलियाँ (Long Arms & Short Fingers)

प्रथम प्रतिमान अर्थात् सभी अंगुलियाँ प्रतिमान से आशय है मुख्यालय से आदेश सीधे क्षेत्रीय कार्यालयों और इकाइयों को भेजे जाते हैं। इस प्रतिमान में मुख्यालय और क्षेत्रीय कार्यालयों के बीच कोई मध्यस्थ नहीं होता है। यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार हमारे हथेली से सीधे ही अंगुलियाँ निकलती हैं। इसे इस चित्र द्वारा दर्शा सकते हैं:–

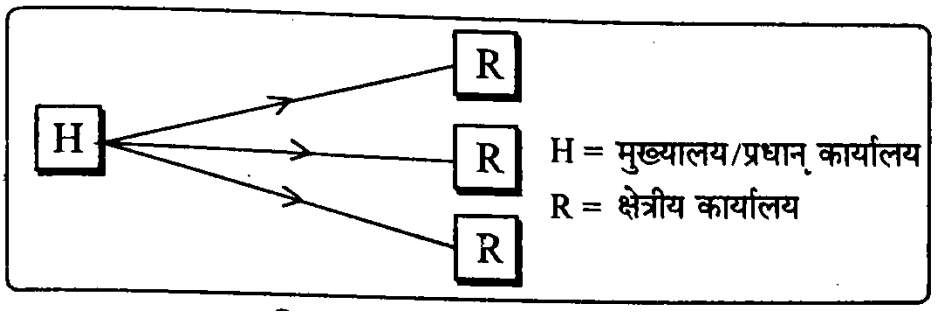

सभी अंगुलियाँ प्रतिमान

छोटी भुजाएँ तथा लम्बी अंगुलियाँ प्रतिमान के अन्तर्गत क्षेत्रीय मुख्यालय प्रधान कार्यालय के अति निकट स्थित होते है। अतः इसे छोटी भुजाएँ कहा जाता है। इन छोटी भुजाओं से आदेश दूर स्थित क्षेत्रीय इकाइयों तक जाते है जिन्हें लम्बी अंगुलियाँ कहा जाता है। इसे इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं–

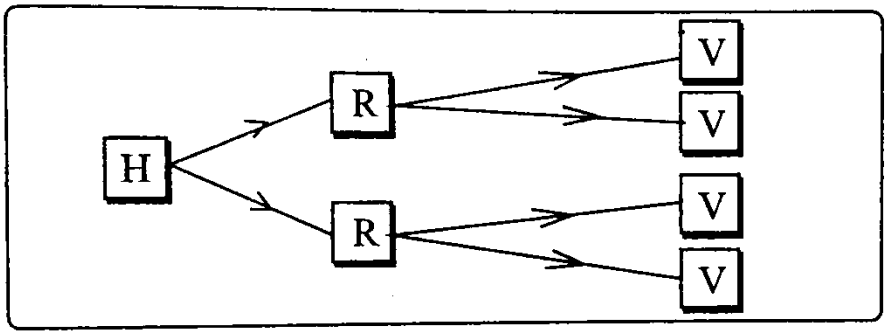

छोटी भुजाएँ–लम्बी अंगुलियाँ प्रतिमान

लम्बी भुजाएँ तथा छोटी अंगुलियाँ प्रतिमान में प्रधान कार्यालय और क्षेत्रीय कार्यालय के बीच काफी दूरी होती है जिन्हें लम्बी भुजाएँ कहा जाता है। क्षेत्रीय कार्यालयों से क्षेत्रीय इकाइयों के बीच दूरी कम होती है। इन्हें छोटी अंगुलियाँ कहा जाता है।

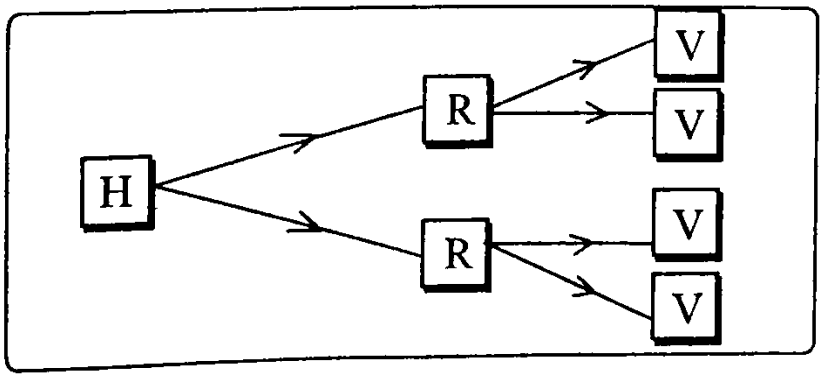

लम्बी भुजाएँ–छोटी अंगुलियाँ प्रतिमान

लोक प्रशासन पर गुलिक के विचार (Views on Public Administration):– लूथर गुलिक लोक–प्रशासन को परिभाषित करते हुए कहते हैं लोक–प्रशासन प्रशासनिक विज्ञान का वह भाग है जिसका सम्बन्ध सरकार से रहता है और इस प्रकार प्रमुखतया इसका सम्बन्ध कार्यपालिका शाखा से है जहाँ सरकार का कार्य किया जाता है, यद्यपि व्यवस्थापिका और न्यायपालिका से सम्बन्धित समस्याएँ भी स्पष्ट रूप से प्रशासकीय समस्याएँ ही हैं।एक अन्य स्थान पर गुलिक लोक–प्रशासन की परिभाषा इस प्रकार करते हैं सरकारी प्रणालियाँ, कार्यों और सेवाओं का विज्ञान तथा कला, विशेषतया प्रबन्धकीय पक्ष से सम्बन्धित। गुलिक लोक–प्रशासन और निजी प्रशासन के बीच समानताओं पर बल देते हैं और इन दोनों के बीच बढ़ती अन्तः क्रियाओं की वकालत करते हैं। गुलिक का मत था कि चूँकि लोक–प्रशासन अनिवार्यतः पर्यावरण में कार्य करता है अतः लोक–प्रशासन को बदलती हुए स्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहिए। गुलिक ने निम्न 3 सरकारी परिवर्तनों की भविष्यवाणी की है (i) अर्न्तराष्ट्रीय सरकारी क्रिया के विस्तार, आकार और आयतन में वृद्धि (ii) घरेलू अर्थव्यवस्था के नियन्त्रण और विनियमन में राष्ट्र–राज्य का घुस जाना (iii) महानगरीय सैटलमेन्ट के नए प्रतिमान का विकास जिसे 'मेगापोलीज' कहते हैं। गुलिक को केवल सिद्धान्तवादी या लोक–प्रशासन का दार्शनिक ही नहीं माना जाना चाहिए। लोक–प्रशासन में सुधार (Improvement) में उनकी रुचि थी और प्रशासनिक सुधारक के रूप में गुलिक ने निम्न सिद्धान्त विकसित किए– (1) सम्बद्ध गतिविधियों को एक इकाई के रूप में प्रशासित किया जाए। (2) सभी एजेनसियों को कुछ विभागों में संचित कर दिया जाना चाहिए। (3) हर संगठनात्मक इकाई को अपनी योग्यता और तकनीकी ज्ञान सिद्ध कर चुके। एक ही अधिकारी के अधीन कर दिया जाना चाहिए। (4) प्राधिकार को उत्तरदायित्व से जोड़ा जाना चाहिए।

(5) हर विभागाध्यक्ष के पास नियमित मूल्यांकन के लिए खुद का स्टाफ होना चाहिए। (6) इस प्रकार के कार्यों को करने की जिम्मेदारी किसी विशिष्ट कार्यकर्ता को सौंपी जानी चाहिए। (7) निर्वाचित पदाधिकारियों की संख्या कम की जानी चाहिए। (8) प्रशासनिक कार्यों के लिए मण्डल और आयोगों का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। (9) मुख्य कार्यकारी को यह शक्ति होनी चाहिए कि वह विभागाध्यक्षों को नियुक्त कर सके, उन्हें हटा सके तथा उनके कार्य को निर्देशित कर सके। (10) मुख्य कार्यकारी के पास शोध स्टाफ होना चाहिए जो विभागीय कार्यों पर प्रतिवेदन दे सके तथा उन्नत विधियाँ सुझा सके।

गुलिक ने द्वितीय विश्वयुद्ध के अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि नीति और प्रशासन के बीच कोई स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती। उनके मत में युद्धकाल का लोक–प्रशासन शान्तिकाल के लोक–प्रशासन से भिन्न होता है। गुलिक कहते हैं कि जब 1937 में उनका 'पैपर्स ऑन दी साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' प्रकाशित हआ था उसके बाद बहुत कुछ ऐसा घटा जिसने लोक–प्रशासन को काफी प्रभावित किया। गुलिक लोक–प्रशासन में मानवीय–घटक को अत्यधिक महत्त्व देते हैं क्योंकि सरकारें मानवों द्वारा ही उनके लिए ही बनाई जाती है। गुलिक के मत में राज्य का मुख्य कार्य मानवीय कल्याण होना चाहिए न कि युद्ध । साथ ही गुलिक लोक–प्रशासन में समय घटक के महत्त्व को पहचानते हैं।अपने युद्धकालीन अनुभवों के आधार पर गुलिक ने लोक–प्रशासन के लिए निम्न 15 सबक (पाठ) तैयार किए हैं (1) अमरिकी सरकारी तन्त्र युद्ध के प्रशासन के लिए पूर्णतया पर्याप्त है। (2) प्रयोजनों का एक स्पष्ट विवरण जिसे सार्वभौमिक रूप से समझा जा सके, प्रभावशाली प्रशासन की असाधारण गारण्टी है। (3) प्रयोजन से कार्यक्रम का अनुवाद प्रशासन का एक जटिल तत्त्व है। (4) समन्वय प्रभावी क्रिया का अपरिहार्य गतिशील प्रनियम है। (5) प्रशासनिक व्यवहारों का नियन्त्रण होना चाहिए। उसकी अनेक तकनीकें हो सकती हैं। (6) युद्ध ने यह स्पष्ट कर दिया है कि नियोजन प्रबन्ध का आवश्यक और सतत आयाम है। (7) प्रशासनिक नियन्त्रण और तकनीकी नियन्त्रण। (8) व्यापक कार्यों वाले संगठन अधिक प्रभावी होते हैं। (9) नियन्त्रण के क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक खींचा गया है। (10) राष्ट्रीय आपत्तियों में क्षमतावान कार्मिक अपरिहार्य है तथा रचनात्मक प्रशासनिक श्रेष्ठता अमूल्य। (11) युद्ध ने लोक–प्रशासन में समय तत्त्व के महत्त्व को स्पष्ट किया है। (12) लोकमत का समर्थन अच्छे प्रशासन के लिए आवश्यक है। (13) संगठित हित समूहों के सदस्य परामर्शदाता और सेल्समैन के रूप में सरकारी कार्यक्रमों के लिए अधिक उपयोगी होते हैं कि प्रशासन के नियमित सदस्यों के। (14) प्रशासन में सत्य प्रभावी क्रिया प्रयोजन की एकता और स्पष्टता से आती है। (15) अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासन ने कोई नई समस्याएँ पैदा नहीं की हैं।

प्रशासन के विज्ञान में विश्वास रखते हुए गुलिक ने लोक–प्रशासन को भावी माँगों के अनुरूप क्षमतावान बनाने के लिए निम्न 5 सूत्री कार्यक्रम बताया है – (i) क्रिया के क्षेत्र के रूप में लोक–प्रशासन को बदलती हुई मानवीय आवश्यकताओं के प्रति अनुकूलित होना चाहिए विशेषतः अन्तर्राष्ट्रीय, आर्थिक और महानगरीय क्षेत्रों में। (ii) विश्लेषण और समझ के रूप में या यूँ कहें अध्ययन अनुशासन के रूप में लोक प्रशासन को व्यापार के अध्ययन और अन्य प्रशासनों के अध्ययनों से सम्बन्धित होना चाहिए। (iii) लोक–प्रशासन को कार्मिक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। (iv) लोक–प्रशासन को 'ऑटोमेशन' (कम्प्यूटर) के अवसरों को स्वीकार करना चाहिए और आगे बढ़ना चाहिए। (v) लोक–प्रशासन को अपने सिद्धान्तों और व्यवहारों पर पुर्नविचार करना चाहिए और नया सूत्रीकरण करना चाहिए।

मूल्यांकन (Evaluation) शास्त्रीय विचारक के रूप में लूथर गुलिक के विचारों को जितना अधिक महत्त्व दिया जाता है उतनी ही उनकी आलोचना भी की जाती है। साइमन जो कि प्रशासन के सिद्धान्तों के कटु आलोचक रहे हैं, संगठन के सिद्धान्तों की धज्जियाँ उड़ाते हुए वे इनको 'कहावतों' का नाम देते हैं। गुलिक के सिद्धान्तों की भारी आलोचना साइमन ने की।

विभागीयकरण के गुलिक द्वारा सुझाए गए आधारों की भी विचारकों ने आलोचना की है। पोस्डकॉर्ब विचार के प्रमुख आलोचक लेविस मेरियम रहे हैं। व्यवहारवादी और मानव सम्बन्ध विचारधारा के समर्थक गुलिक पर मानवीय घटकों की अवहेलना करने का आरोप लगाते हैं । यद्यपि गुलिक ने अपनी बाद की लेखनी में मानवीय घटकों को पर्याप्त महत्त्व दिया। गुलिक द्वारा अनौपचारिक संगठनों की पूरी तरह अवहेलना की गई। उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद लोक–प्रशासन को गुलिक का योगदान सदैव याद किया जाएगा। ब्राइन फ्राई द्वारा गुलिक को 'लोक–प्रशासन का डीन' कहा जाना उचित ही है।

अध्याय – 11

मैक्स वेबर

(MAX WEBAR)

प्रशासनिक विज्ञान के अध्ययन में नौकरशाही विषय को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है क्योंकि इस संकल्पना का उद्देश्य संगठित स्थितियों में सत्ता नियंत्रण की व्याख्या करना है। मैक्स वेबर का नाम एक तरह से नौकरशाही का पर्यायवाची हो गया है क्योंकि समाज विज्ञान के जिन विद्वानों ने नौकरशाही की अवधारणा की व्याख्या करने की चेष्टा की है उनमें वेबर का स्थान अद्वितीय है। वेबर ने अपनी अवधारणाओं में इतिहास से लेकर तुलनात्मक समाज विज्ञान तक विविध विषयों पर विस्तृत चर्चा की है जिसके कारण वेबर पूरी दुनिया के शैक्षिक जगत में अमर हो गए हैं। आधुनिक प्रशासनिक विचारकों पर मैक्स वेबर का ऐसा प्रभाव है कि नौकरशाही की जितनी प्रस्थापनाएं या मॉडल प्रकाश में आए वे सब या तो वेबरियन मॉडल के विरोधी थे या उसके भिन्न–भिन्न रूपांतर थे। इसी कारणवश नौकरशाही की अवधारणा को समझने के लिए वेबर का मॉडल एक प्रस्थान बिन्दु बन जाता है। इसी प्रकार वेबर द्वारा प्रतिपादित प्रभुत्व और 'वैधता' के सिद्धांत नौकरशाही के क्षेत्र में हुए बाद के अनेक अध्ययनों का आधार बने।

मैक्स वेबर का जन्म 1864 में पश्चिमी जर्मनी के एक कपड़ा विनिर्माता परिवार में हुआ था। 1882 में प्राथमिक स्कूल की शिक्षा पूरी करने के बाद वेबर ने हाइडलबर्ग विश्वविद्यालय में विधि का अध्ययन किया। 1889 में उन्होंने ''मध्ययुगीन व्यापार संगठनों का इतिहास में योगदान'' पर डॉक्टरेट उपाधि हासिल करने के लिए शोध प्रबंध जमा किया। 1891 में अपना दूसरा शोध प्रबंध ''रोम का कृषिकालीन इतिहास और निजी तथा सार्वजनिक कानून के लिए इसका महत्व'' पूरा किया। इसके पहले वेबर ने कानून के अनुदेशक (Instructor) की हैसियत से बर्लिन विश्वविद्यालय में काम करना शुरू किया। 1894 में वे फीडेलबर्ग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के एक प्रोफेसर बने। 1896 ईसवी में उन्होंने हाइडलबर्ग विश्वविद्यालय में एक पद स्वीकार किया।

वेबर के जीवन में कुछ ऐसे तथ्य हैं जिन पर ध्यान देना उनके लेखन के विश्लेषण का प्रयास करने से पहले जरूरी है। पहली बात तो यह हैं कि वेबर में व्यवस्थित अध्ययन और विश्लेषण की उत्सुकता 13 वर्ष की उम्र में ही शुरू हो गयी थी। दूसरी बात यह है कि वेबर वास्तविक अनुभवों से हासिल ज्ञान को किताबी ज्ञान से ज्यादा पसंद करते थे। उनके बारे में तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि बाहर से प्रगतिशील दिखने वाले वेबर हृदय से रूढ़िवादी थे। चौथी बात यह है कि वेबर के लेखन में तत्कालीन जर्मनी की सामाजिक दशाएं प्रतिबिंबित होती हैं। वेबर ने देखा कि तत्कालीन समाज को नौकरशाही के सांचे में ढालने में उदारवाद का पतन हो रहा है, जो उन्हें व्यक्ति मात्र के लिए खतरे के रूप में दिखा। बिस्मार्क के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण और मध्यवर्गीय उदारवादी आन्दोलन का समापन–इन स्थितियों ने वेबर को आश्वस्त किया कि बड़े लक्ष्य केवल सत्ता की राजनीति के जरिए ही हासिल किए जा सकते हैं।

सत्ता, संगठन और वैधता

प्रशासन के क्षेत्र में वेबर द्वारा किए गए कार्यों में विशेष रूप से जो तत्व उल्लेखनीय हैं, उनमें प्रभुत्व, नेतृत्व और वैधता के सिद्धांतों का उल्लेख किया जा सकता है। उन्होंने धर्म और समाज, और जिस तरीके से वे नेतृत्व के प्रतिमानों को ढालते हैं, को ध्यान में रखते हुए इन सिद्धांतों को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य के साथ प्रतिपादित किया।

वेबर ने सत्ता, शक्ति और नियंत्रण में भेद किया। उनके अनुसार किसी व्यक्ति के पास शक्ति होने का सबूत यह होता है कि वह तमाम प्रतिरोधों के बावजूद समाज पर अपनी इच्छा थोप सके और शक्ति का ऐसा प्रयोग नियंत्रित बन जाता है। नियंत्रणमूलक सत्ता तंत्र के इसी विशिष्ट दृष्टांत में मानव समूह की संरचना के मूलभूत तत्व अंतर्भूत होते हैं। यह वास्तविकता तब उभरकर सामने आती है जब ''एक निश्चित नियंत्रण समूह – विशेष व्यक्तियों के जरिए आदेशों का पालन करवाता है।'' वेबर का मानना है कि सत्ता दरअसल ''अधिनायकवादी सत्तादेश'' ही है। वे सत्ता के जिन पांच आवश्यक तत्वों का उल्लेख करते हैं वे हैं: 1. एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का वह निकाय जो शासन करता है: 2. व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का निकाय जो शासित होता है: 3. शासितों के व्यवहार को प्रभावित करने वाली शासकों की इच्छा और इस इच्छा या आदेश की अभिव्यक्ति: 4. शासकों के प्रभाव का साक्ष्य आदेश की वास्तविक कोटि के संदर्भ में: 5. शासित जिस व्यक्तिपरक स्वीकारोक्ति के साथ आदेश मानते हैं उसके अनुसार उस प्रभाव का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रमाण/सत्ता तभी तक कायम रहती है जब तक इसे शासितों द्वारा वैधता हासिल होती है। इस तरह कोई संगठन तभी तक शासन या प्रशासन कर सकता है जब तक यह शासितों द्वारा वैध करार दिया जाता है। विभिन्न तरह की सत्ता की विभिन्न संगठनों में विवेचना करते हुए वेबर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सभी तरह के प्रशासन का मतलब प्रभुत्व ही होता है।

उन्होंने संगठनों में लोगों को इस तरह श्रेणियों में रखा है:

1. वे लोग जो आदेशों का पालन करने के आदी होते हैं।
2. वे लोग जो प्रभुत्व के बने रहने में व्यक्तिगत रूप से रुचि लेते हैं क्योंकि इससे उन्हें फायदे पहुंचते हैं।
3. वे लोग जो इस अर्थ में उस प्रभुत्व में भागीदार होते हैं कि प्रभुत्व परिचालन (कार्य व्यवहार में इस्तेमाल) उनके जरिए होता है।
4. वे लोग जो अपने आपको इन कार्यों के लिए तैयार रखते हैं।

यहां जिस बात को विशेष रूप से ध्यान में रखने की जरूरत है, वह यह है कि वेबर ने प्रशासन को प्रभुत्व या ''सत्ता–प्रयोग'' के रूप में परिभाषित किया है जबकि दूसरे अधिकांश प्रशासनिक चिंतकों ने प्रशासन को सेवा या कर्तव्य निष्पादन के रूप में परिभाषित किया है। वेबर ने वैधता की तीन अवस्थाएं निर्धारित की हैं

कानूनी सत्ता

कानूनी सत्ता की अवधारणा उन संगठनों में मूर्त हो सकती है जहां नियमों को न्यायसंगत ढंग से और संगठन के सभी सदस्यों के लिए वैध सुनिश्चित सिद्धांतों के अनुसार प्रयुक्त किया जाता है। शक्ति का प्रयोग करने वाले सदस्य वरिष्ठ अधिकारी होते हैं जिनकी नियुक्ति या चुनाव कानूनी प्रक्रिया द्वारा होती है ताकि विधिक क्रम कायम रहे। 'कानूनी आदेशों का पालन करने वाले और इनका पालन कराने वाले' अधिकार के नियमों की व्यवस्था में सभी बराबर होते हैं। ऐसे नियमबद्ध संगठनों में निरंतरता रहती है और उनके सदस्य ऐसे नियमों से निर्देश्ति होते हैं, जो उनके अधिकारों को उनके प्रयोग पर आवश्यक नियंत्रण के साथ सीमित करते हैं।

पारंपरिक सत्ता

पारंपरिक सत्ता अनंत काल से अपनी स्वीकारोक्ति से निरंतर अपनी वैधता ग्रहण करती है। ऐसी पारंपरिक सत्ता का इस्तेमाल करने वाले लोगों को आमतौर पर 'मालिक' शब्द से संबोधित किया जाता है। उन्हें यह निजी सत्ता 'वंश विरासत' की सामाजिक परंपरा के कारण हासिल होती है जिसमें उनका कोई व्यक्तिगत प्रयास शामिल नहीं होता मगर इस ओहदे का आनंद वे व्यक्तिगत रूप से ही उठाते हैं। ऐसा आदेश समाज में मौजूद रिवाजों से वैधता ग्रहण करता है। ऐसे प्रभुत्वसंपन्न स्वामियों का निर्णय उनकी व्यक्तिगत इच्छाओं पर निर्भर होता है। इसके लिए किसी तार्किक आधार या नीति नियामक संस्था की आवश्यकता नहीं है। ऐसे प्रभुत्वसंपन्न स्वामियों की आज्ञाएं रिवाजों की आड़ में व्यक्तिगत संतुष्टि का माध्यम ही होती हैं। ऐसी सत्ता व्यक्तिगत स्वेच्छाचारिता की आधारभूमि

होती है। इस तरह के प्रभुत्वसंपन्न स्वामियों का आदेश पालन करने वाले लोग 'अनुचर' कहलाते हैं। ये 'अनुचर' अपने स्वामियों के आदेशों का पालन पूरी वफादारी से करते हुए मालिक की प्रस्थिति के प्रति गहरे आदर–भाव का प्रदर्शन करते हैं। इस पुश्तैनी.सत्ता में जो व्यक्ति आदेशों का पालन करते हैं वे निजी सेवक, घरेलू कर्मचारी, विश्वासपात्र, रिश्तेदार और मालिक के चहेते होते हैं। सामंती सामाजिक. व्यवस्था में ऐसे लोग मालिक के निष्ठावान सहायक होते हैं। यही कारण है कि ये लोग अपनी तमाम गतिविधियों और व्यवहार के लिए अपने विवेक के बजाय मालिक की इच्छा, सनक और उसे खुश करने की कोशिश पर निर्भर होते हैं। मालिक की इच्छा और सनक के अनुसार इन्हें अपने तौर–तरीकों में बदलाव लाना पड़ता है। ऐसे में किसी मामले को लेकर उनकी राय बनती–बदलती रहती है। फिर भी इनकी तमाम गतिविधियों को रिवाजों और परंपरा के नाम पर वैधता हासिल होती है।

करिश्माई सत्ता

किसी नेता चाहे वह देवदूत या पैगंबर किस्म के व्यक्ति, नायक अथवा कुशल, वक्ता हो द्वारा शक्ति का प्रयोग अपनी जादुई शक्ति, नायकत्व या अन्य प्रकृति प्रदत्त. असाधारण वरदान व गुणों द्वारा अपने दावे को प्रमाणित करने के लिए किया जाता है। इस तरह के चमत्कार और उसकी स्वीकृति ही इस व्यवस्था को वैधता प्रदान करती है। इस व्यवस्था के तहत जो लोग इन चमत्कारिक व्यक्तित्व वाले लोगों की आज्ञा का. पालन करते हैं वे लोग किसी नियम, अनुबंध या पद–मर्यादा के चलते ऐसा नहीं करते बल्कि इस तरह के व्यक्ति की असाधारण क्षमताओं के चलते उनका अनुसरण करते हैं। चमत्कारिक नेता अपनी सत्ता के संचालन के लिए जो तंत्र निर्मित करता है उसमें वह अधिकारों या पद प्रतिस्थापन का विभाजन अनुचरों की योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि अपने प्रति उनमें निजी समर्पण के आधार पर करता है। ये ''शिष्यं अधिकारी'' मिलकर संगठन का निर्माण करते हैं और उनकी गतिविधियों का क्षेत्र और आदेश की शक्ति के लिए नायक की इच्छा–अनिच्छा पर निर्भर होते हैं।

वेबर के अनुसार ये तीनों तरह की सत्ताएं तभी तक वैध बनी रहती हैं जब तक ''शासित लोग इस तरह की सत्ता को स्वीकृति प्रदान करते हैं। करिश्माई या चमत्कारिक सत्ता का आधार तब डिगता है जब करिश्माई व्यक्ति निरंकुशता की सभी हदें पार कर जाता है, परंपराओं का खुल्लम–खुल्ला उल्लंघन करता है और अपना करिश्मा खो बैठता है। वेबर ने इन तीनों तरह की सत्ता–प्रणालियों और इनके नेतृत्व के प्रकारों की भी विस्तार से व्याख्या की है। वेबर का मानना है कि ये ''विशुद्ध प्रकार'' की सत्ताएं अलग–अलग प्रकार की होने के बजाय हमेशा आपस में संयोजित होती हैं। लेकिन वेबर का मानना है कि इनका विश्लेषण अलग–अलग रूप में ही किया जाना चाहिए जिससे कि एक संयोजन या संश्लेषण में विद्यमान कानूनी, पारंपरिक और चमत्कारिक तत्वों के गठन का पता लगाया जा सके। इससे यह हमेशा संभव है कि समय बीतने के साथ एक तरह की सत्ता–प्रणाली में दूसरे तरह की सत्ता–प्रणाली के लक्षणों को ग्रहण करने की क्षमता है जो एक संस्थागत संरचना के दूसरी संस्थागत संरचना में रूपांतरित होने पर फलीभूत होती है। इन तीनों तरह की सत्ता–प्रणालियों में से वेबर कानूनी सत्ता–प्रणाली को उसमें निहित तार्किकता के कारण ज्यादा पसंद करते हैं। यही नहीं, वेबर जोर देकर यह भी कहते हैं कि यह सिर्फ कानूनी प्रकार की सत्ता प्रणाली या प्रभुत्व है जो आधुनिक सरकारों के लिए उपयुक्त है। इसी कारणवश वेबर ने नौकरशाही के अपने मॉडल की रूपरेखा प्रस्तुत करते समय वैधानिक–तर्कपरकता को भी ध्यान में रखा।

नौकरशाही

किसी न किसी रूप में लोक सेवा कार्यालय हमेशा से विश्व की संगठित सरकारों के एक हिस्से के रूप में मौजूद रहे हैं। उदाहरण के लिए चीन में ऐसे कार्यालयों की मौजूदगी के साक्ष्य 186 ईसा पूर्व में भी मिलते हैं। यही नहीं, उस काल में भी वहां ऐसे पदों पर विभिन्न अधिकारियों की भर्ती प्रतियोगिता परीक्षाओं के जरिए होती थी। ऐसे सरकारी पदों पर नियुक्त व्यक्तियों में कुछ विशिष्ट विशेषताएं आ जाती हैं जो कि सार्वभौमिक होते हैं।

ये फ्रेंच अर्थशास्त्री एम.डी. गोर्ने थे जिन्होंने 18वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में नौकरशाही (ब्यूरोक्रेसी) शब्द का पहली बार इस्तेमाल किया। इस तरह, नौकरशाही शब्द का प्रादुर्भाव हुआ। परवर्ती फ्रांसीसी लेखकों ने इस शब्द का इस्तेमाल इतना ज्यादा किया कि यह बहुप्रचारित हो गया। लेकिन ब्रितानी समाज विज्ञानियों ने इस शब्द का इस्तेमाल 19वीं शताब्दी में शुरू किया। अग्रगण्य राजनीतिक अर्थशास्त्री जे.एस. मिल ने अपनी विश्लेषण श्रृंखला में नौकरशाही को भी स्थान दिया। मोस्का और मिचेल्स दो अन्य महत्वपूर्ण समाजशास्त्री थे जिन्होंने नौकरशाही पर विस्तार से लिखा। फिर भी जब नौकरशाही पर बात होती है तो सबसे महत्वपूर्ण नाम के रूप में मैक्स वेबर का ही उल्लेख होता है। इसका सीधा कारण यह है कि मैक्स वेबर पहले ऐसे समाजविज्ञानी हैं जिन्होंने नौकरशाही और इसकी विशेषताओं का व्यवस्थित अध्ययन किया। नौकरशाही का वेबरियन मॉडल अनेक लोगों की प्रेरणा का स्रोत बना है क्योंकि आमतौर पर इसमें आधुनिक नौकरशाही की आत्मा प्रतिबिंबित होती है। यही कारण है कि नौकरशाही के वेबरियन मॉडल को अन्य दूसरे मॉडलों के संदर्भ में आधार की तरह प्रयोग में लाया जाता है।

वेबर ने नौकरशाही को कभी भी परिभाषित नहीं किया। उन्होंने केवल इसकी विशेषताओं का वर्णन किया है। वेबर के लिए नौकरशाही ''नियुक्त अधिकारियों का एक प्रशासनिक ढांचा'' है। इस तरह उन्होंने नौकरशाही में प्रत्यक्ष रूप से चुने हुए लोगों की बजाय नियुक्त अधिकारियों को ही सम्मिलित किया है। प्रभुत्व के क्रमिक विभाजन की ही तरह वेबर ने नौकरशाही का भी श्रेणियों में वर्गीकरण किया है। उन्होंने इसे–आनुवंशिक और कानूनी – तार्किक नौकरशाही नामक दो प्रकारों में वर्गीकृत किया है। पारंपरिक और करिश्माई सत्ता प्रणालियों में पायी जाने वाली पैतृक नौकरशाही और कानूनी प्रभुत्व में नौकरशाही का विधिक तार्किक रूप।

नौकरशाही के वेबरियन मॉडल के रूप में मशहूर कानूनी–तार्किक नौकरशाही की लाक्षणिक विशेषताओं का आगे और व्यापक विश्लेषण किया गया है। वेबर वैधता को बहुत महत्व देते थे। उनके अनुसार वैधता सभी तरह की सत्ता प्रणालियों का आधार है। सत्ता की वैधता के लिए वेबर ने पांच महत्वपूर्ण विश्वासों का उल्लेख किया जो कि इस तरह हैं: –

1. संगठन के सभी सदस्यों से आज्ञापालन की अपेक्षा करने वाली एक विधि– संहिता बनाई जा सकती है।
2. कानून अमूर्त नियमों की व्यवस्था है, जो विशिष्ट मामलों में प्रयोग में लाया जाता है। प्रशासन का काम है ऐसे कानूनों की सीमा में संगठन के हितों को सुनिश्चित करना:
3. वेबर के मुताबिक सत्ता की वैधता तय करने वाले इस क्रम का तीसरा विश्वास यह है कि वे लोग भी कानून का पालन करें जो दूसरों से इसका पालन कराते हैं:
4. चौथा विश्वास यह है कि केवल सदस्य की हैसियत से ये सदस्य कानून का पालन करते हैं: और
5. आज्ञा पालन उस व्यक्ति की बदौलत नहीं अपितु उस निर्वैयक्तिक आदेश की वजह से इसका पालन करते हैं, जिसने पालन करवाने वाले व्यक्ति को अधिकार दिए हैं।

ये पांच तत्व इस बात की पुष्टि करते हैं कि वेबर वैधता और निर्वैयक्तिक आदेश के बीच प्रगाढ़ अन्तर्संबंधों पर जोर देते हैं।

वेबर को नौकरशाही के बारे में अपनी विस्तृत समझ विकसित करने में और इसकी व्याख्या करने में चार प्रमुख तत्वों ने प्रभावित किया:

1. विशेष रूप से पश्चिमी सभ्यताओं में नौकरशाहीकरण की प्रक्रिया के लिए ऐतिहासिक, तकनीकी और प्रशासनिक कारण।
2. नौकरशाही के कार्यकरण पर विधि के शासन का प्रभाव।
3. एक अभिजन समूह के रूप में नौकरशाही के अधिकारियों की पेशेवर स्थिति तथा निजी अभिमुखीकरण।।
4. आधुनिक विश्व में नौकरशाही और विशेषकर सरकारी नौकरशाही के सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण और परिणाम।

नौकरशाही का वेबर का मॉडल

वेबर द्वारा अभिकल्पित नौकरशाही के वैधानिक–तार्किक मॉडल की निम्न विशेषताएं हैं:

1. कार्यालय के कामों को नियमित आधार पर संचालित किया जाता है।
2. एक प्रशासनिक एजेंसी निर्धारित नियमों के तहत काम करती है जिसके .तीन अंतरसंबधित लक्षण होते है: (अ) हर अधिकारी की शक्ति और उसके कार्य का निर्वैयक्तिक मानकों के अनुसार सीमांकन होता है। (ब) अधिकारियों को उनके उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए समरूपी अधिकार दिए जाते हैं। (स) अधिकारियों के पास बाध्यता के अत्यंत सीमित साधन होते हैं और इन साधनों का कब और किस तरह प्रयोग करना है इसकी भी एक स्पष्ट व्यवस्था होती है।
3. प्रत्येक अधिकारी सत्ता के सोपान का भाग होता है। उच्च अधिकारी निम्न अधिकारियों का पर्यवेक्षण करते हैं. लेकिन निम्न अधिकारियों को अपील करने का अधिकार होता है।
4. अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए इन अधिकारीगणों के पास आवश्यक संसाधन नहीं होते। वे केवल उपलब्ध कराए गए आधिकारिक संसाधनों के उपयोग के लिए उत्तरदायी होते हैं। सरकारी कार्य और निजी मामले, सरकारी राजस्व और निजी आय, इन सबको कठोरतापूर्वक पृथक किया जाता है।
5. पदों को पदधारी व्यक्ति अपनी निजी संपत्ति नहीं बना सकते जिसे बेचा जा सके या विरासत में प्राप्त किया जा सके।
6. प्रशासन लिखित दस्तावेजों के आधार पर संचालित होता है।

नौकरशाही के इस मॉडल द्वारा बताई गई लाक्षणिक विशेषताएं

1. ऐसा अधिकारी व्यक्तिगत तौर पर स्वतंत्र होता है और उसे अनुबंध के आधार पर किसी सरकारी पद पर नियुक्त किया जाता है।
2. कोई भी अधिकारी निर्वैयक्तिक नियमों के तहत स्वयं को प्रत्यायोजित सत्ता का प्रयोग करता है। ऐसे में अधिकारी की वफादारी उसके द्वारा कार्यालय के कामों को ईमानदारी से निष्पादित करने में अभिव्यक्त होती है।
3. किसी अधिकारी की नियुक्ति और उसका कार्यक्षेत्र उसकी तकनीकी (प्रशासनिक) योग्यता पर निर्भर करता है।
4. उसका प्रशासनिक कार्य उसका पूर्णकालिक पेशा होता है।
5. उसके काम के एवज में उसे नियमित वेतन और जीवनवृति के दौरान पूरे समय तक नियमित उन्नति की संभावनाओं से पुरस्कृत किया जाता है।

वेबर का मानना था कि यह वैधानिक–तार्किक नौकरशाही तकनीकी रूप से अन्य सभी प्रशासनिक प्रणालियों से श्रेष्ठ है। आगे इन्होंने जोर देकर कहा कि जो लोग एक बार नौकरशाही का शासन देख चुके हों वे कभी किसी दूसरे विकल्प के बारे में सोचते तक नहीं। इसीलिए यह स्थाई और अपरिहार्य है।

नौकरशाही के वेबरियन मॉडल के मुख्य तत्व निम्न प्रकार है:–

1. **निर्वैयक्तिक आदेश–** वेबर की ''आदर्श प्रकार'' नौकरशाही के परिप्रेक्ष्य में यह सबसे असाधारण व विचारोत्तेजक पहलू है। वेबर का यह सोचना है कि निर्वैयक्तिक आदेश की विचारधारा नौकरशाहों के आदेशों में और उनके मातहतों द्वारा उनके अनुपालन में मौजूद होनी चाहिए। वेबर के मुताबिक आज्ञा मानने और आज्ञा मनवाने जैसी प्रक्रियाओं की दिशा इसी आदेश के अंतर्गत तय होनी चाहिए। इसे मर्टन के शब्दों में यूं रखा जा सकता है, ''सत्ता अर्थात् नियंत्रण की शक्ति जो कि एक स्वीकृत प्रस्थिति से उद्भूत होती है, पद में निहित होती है न कि पदासीन व्यक्ति में।'' संबंधों के निर्वैयक्तिकीकरण पर जोर नौकरशाहों की प्रशिक्षित अक्षमता में भी योगदान देता है।
2. **नियम–** वेबर की तार्किक – कानूनी सत्ता की मूल विशेषता नियमों से बंधे सरकारी कार्यों को निरंतर संगठित करना है। दफ्तर के कार्य व्यवहार को. नियंत्रित करने वाले नियम तकनीकी नियम या मानदंड हो सकते

हैं। इनके तार्किक इस्तेमाल के लिए एक विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। मर्टन ने ठीक ही कहा है कि नियमों का अनुपालन, जिसकी कल्पना मूलतः एक साधन के रूप में की गई है स्वयं साध्य बन जाता है यहां लक्ष्यों के विस्थापन की एक परिचित प्रक्रिया घटित होती है जिसके द्वारा "एक साधनात्मक या सहायक मूल्य गंतव्य (अंतिम) मूल्य बन जाता है''। इसे ही कहते हैं 'नियम' का 'खेल' (कार्य) से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाना। साथ ही यह भी जान लेना जरूरी है कि नियमों से कार्य प्रणाली संबंधी विलम्ब होता है क्योंकि इससे प्रशासन में जटिलता पैदा हो जाती है।

3. **सक्षमता की परिधि** – वेबर के अनुसार एक विशिष्ट सक्षमता की परिधि के अंदर जो तत्व आते हैं वे है। (अ) कार्य निष्पादन के दायित्व का क्षेत्र जिसका उल्लेख श्रम के व्यवस्थित विभाजन के एक हिस्से के रूप में किया गया है। (ब) दायित्व की परिधि में आने वाले कार्यों के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक सत्ता से युक्त एक पदधारी की नियुक्ति। (स) स्पष्ट रूप से परिभाषित बाध्यता के साधन जो कि अपने प्रयोग में निशचित दशाओं के अधीन होते हैं।

4. पदसोपान – वेबर पहले ही कह चुके हैं कि ''पदों को संगठित करने में पदसोपान के सिद्धांत का पालन किया जाता है जिसके अंतर्गत हर निम्न पद किसी उच्च पद के नियंत्रण और पर्यवेक्षण में होता है।'' वह यह भी कहते हैं, ''एक सर्वोच्च सत्ता के अधीन कार्यरत सम्पूर्ण प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग पदों के एक स्पष्ट रूप से पारिभाषित पदसोपान के रूप–में संगठित होता है।'' वेबर पदों को संगठित करने में तथा साथ ही उन पदों पर आसीन प्रशासनिक कर्मचारी–वर्ग के संबंध में पदसोपान के सिद्धांत को अधिक महत्व देते हैं।

5. **निजी और लोक हित** – वेबर की आदर्श प्रकार की नौकरशाही के ढांचे में उपयोगिता और प्रासंगिकता का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। यहां तक कि वह इसके लिए प्रशासनिक कर्मचारियों को प्रशासन और उत्पादन के साधनों के स्वामित्व से पृथक रखने की वकालत करते हैं। यही नहीं, वह पदधारियों द्वारा सरकारी पद के हड़पने को भी समाप्त करने की वकालत करते हैं। उनका तर्क है कि नौकरशाहों को अपने पद का दुरुपयोग करने से रोकने. के लिए यह आवश्यक है। साथ ही, वेबर का यह भी मानना था कि यह नियम किसी भी व्यवस्था के लिए प्रासंगिक है।

6. **लिखित दस्तावेज** – वेबरियन नौकरशाही का अंतिम सिद्धांत यह है कि, ''प्रशासनिक कार्रवाई, निर्णय और नियमों को लिखित रूप में बनाया जाता है और सुरिक्षत रखा जाता है। यह उस स्थिति में भी लागू होता है जब मौखिक विमर्श करना नियम हो और यहां तक कि अनिवार्य हो। अभिलेखन प्रशासन को जनसाधारण के प्रति उत्तरदायी बनाता है और साथ ही, यह भविष्य की कार्रवाई के लिए संदर्भ का कार्य करता है।

वेबर के मॉडल का सबसे प्रशंसनीय अंश वह खंड है जो प्रशासन के लिए तकनीकी योग्यता में दक्ष लोगों के चयन पर बल देता है। कर्मचारी के लिए अन्य मानदंड हैं निश्चित और नियमित वेतन, उनकी पदोन्नति के लिए पूरी जीवनवृत्ति के दौरान संभावनाओं का बने रहना, दफ्तर में पूरे समय का काम और कड़ा और व्यवस्थित अनुशासन और नियंत्रण। ये तमाम ऐसे बिन्दु हैं जो आधुनिक नौकरशाही की कार्यकुशलता और योग्यता के लिए भी आवश्यक हैं। वेबर जोर देकर कहते हैं कि एकतंत्रीय नौकरशाही संगठन विशुद्ध तकनीकी दृष्टिकोण से उच्चतम स्तर की दक्षता हासिल करने में सक्षम है।

वेबर के आलोचक

नौकरशाही के वेबर मॉडल की मुख्यतः तीन बातों को लेकर आलोचना की जाती हैः

1. मॉडल की तर्कशीलता 2. भिन्न स्थानों, और बदलते समयं की प्रशासनिक आवश्यकताओं के संदर्भ में वेबर का मॉडल कितना उपयुक्त साबित हो सकता है, 3. क्या यह मॉडल जैसा कि वेबर ने दर्शाया है, महत्तम दक्षता हासिल कर सकता है?

रॉबर्ट मर्टन तथा कुछ अन्य समाजशास्त्रियों ने वेबर के कानूनी–तार्किक मॉडल, पर सवाल उठाए हैं क्योंकि इनका मानना है कि यह मॉडल कुछ दुष्क्रियात्मक परिणामों को भी जन्म देता है। मर्टन के मुताबिक संरचना, विशेषकर पदसोपान और नियम, जो कि वेबर के अर्थ में तार्किक है, आसानी से ऐसे परिणामों को जन्म दे सकते हैं जो अप्रत्याशित और संगठन के लक्ष्यों के लिए नुकसानदेह साबित हो सकते हैं। इस बिन्दु पर जोर देते हुए मर्टन यह साबित करने की कोशशि करते हैं कि नौकरशाही का मतलब अकुशलता है। वेबर के अन्य आलोचक फिलिप सेल्जनिक हैं। सेल्जनिक एक संगठन में कार्य विभाजन को इंगित करते हुए आशंकित हैं कि संगठन की उप–इकाइयां अपने निजी लक्ष्य निर्धारित कर सकती हैं जो कि संगठन के एकीकृत लक्ष्य के विपरीत जा सकता है और इस तरह संगठन का मूल ध्येय ही बाधित हो सकता है। मर्टन और सेल्जनिक दर्शाते हैं कि किस तरह वेबर द्वारा रेखांकित संगठनात्मक संरचना का औपचारिक विनिर्देशन अपर्याप्त है जो इस बात का वर्णन करने में पूरी तरह से असमर्थ है कि वास्तव में नौकरशाह कैसा व्यवहार करेंगे, क्योंकि प्रशासनिक संहिता से परे एक सामाजिक प्राणी होने के नाते अधिकारियों की कुछ अपनी निजी चारित्रिक विशेषताएं भी होती हैं। ये आलोचनाएं प्रतिबिम्बित करती हैं कि 1930 के दशक के दौरान औद्योगिक समाजशास्त्र का व्यवहारवादी पक्ष कितना समृद्ध हो चुका था।

टॉलकाट पारसंस ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि वेबर आशा करते हैं कि प्रशासनिक कर्मचारी तकनीकी रूप में श्रेष्ठ हो और उसे आदेश देने का अधिकार प्राप्त हो। यह जरूरी नहीं है कि सत्ता के सोपान में उच्च पदधारी कोई प्रशासनिक अधिकारी समतुल्य पेशेवर कौशल से भी युक्त है। ऐसी स्थिति में किसी संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के समक्ष यह दुविधा खड़ी हो जाएगी कि वे उस व्यक्ति की आज्ञा का पालन करें जो कि प्रशासनिक, प्रमुख है अथवा उस व्यक्ति की आज्ञा का पालन करें जिसके पास अधिक विशेषज्ञता है।

आलविन गॉउल्डनर ने नौकरशाही में दो प्रमुख भेद किए हैं:

(अ) दंड केन्द्रित नौकरशाही – यह कर्मचारियों (प्रशासनिक अधिकारियों) का एक ऐसा तंत्र होता है, जिसको संगठन के सदस्य अपना नहीं मान पाते। इनकी आज्ञाओं का पालन अनिच्छा से होता है। एक तरह से इनकी आज्ञाएं बाहरी समूह द्वारा थोपी हुई लगती हैं।

(ब) प्रतिनिधिक नौकरशाही – यह अधिकारियों का वह समूह होता है जिसकी आज्ञाओं का संगठन के लोग खुशी–खुशी से पालन करते हैं, क्योंकि ये उन्हें तकनीकी रूप से आवश्यक और अपने हित में लगते हैं। ऐसे में गाउल्डनर संगठन के सदस्यों द्वारा नियमों के अनुपालन की समस्या को प्रशासनिक ढांचे के भीतर की अनौपचारिक प्रक्रिया की वजह से नहीं उठाया, बल्कि संगठन की बाहरी दशाओं की वजह से उठाया है। रूडोल्फ की आलोचना यह है कि यह मॉडल यह गलत अवधारणा प्रदान करता है कि प्रशासन एक तार्किक मशीन है और कर्मचारी केवल इसके तकनीकी कलपुर्जे। वेबर के जीवनीकार और एक प्रसिद्ध बुद्धिजीवी राइनहार्ड बेन्डिक्स का कहना है कि ऐसा संभव नहीं है कि सामान्य सामाजिक और राजनीतिक मूल्य के हस्तक्षेप के बिना किसी नियम का अनुपालन हो। सभी नियमों को विशेष मामलों में इस्तेमाल करना होता है। लेकिन यहां अधिकारियों का नजरिया निर्णय लेने में प्रबल भूमिका अदा करता है। पीटर ब्लाऊ जैसे अनेक आलोचक मानते हैं कि वेबरियन मॉडल को हर जगह और काल के प्रशासनों में क्रियानवित नहीं किया जा सकता। ब्लाऊ का मानना था कि ''तार्किक प्रशासन'' की अवधारणा पर एक नई दृष्टि डाली जानी चाहिए। बदलते वातावरण में ''सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति नौकरशाही के ढांचे में सतत बदलावों पर निर्भर करती है।'' यही कारण है कि अधिकारी को कुछ कठोर नियमों में बांध देने से दक्षता की गारंटी नहीं दी जा सकती।

रोबर्ट प्रेस्थस का मानना है कि मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा मानव अभिप्रेरणा के बारे में अप्रत्यक्ष धारणाएं गढ़ती हैं जो कि जरूरी नहीं है कि गैर पश्चिमी दुनिया में भी लागू हों। जोसेफ ला पालोम्बरा का

कहना है कि विकासशील देशों के लिए रूस और चीन के तरीके का प्रशासन वेबरियन नौकरशाही के मुकाबले कहीं ज्यादा प्रभावी साबित हो सकता है।

एच.सी. क्रील और ए.बी. स्पिटजर को वेबर के इस दावे पर आपत्ति है कि तार्किक नौकरशाही एक आधुनिक प्रघटना है। मसलन क्रील जोरदार ढंग से कहते – हैं कि नौकरशाही के वेबरियन मॉडल के लगभग सभी गुण 200 ईसा पूर्व चीन में अस्तित्व में थे। इसी तरह स्पिटजर का मानना है कि 19वीं शताब्दी में फ्रांसीसी प्रीफेक्ट के कार्य वेबरियन नौकरशाह के मुकाबले कहीं ज्यादा व्यापक हैं। फ्रेडरिक बूरिन कहते हैं कि वेबर का सिद्धांत नौकरशाही के प्रचालन में होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनों की उपेक्षा करता है, मसलन उनके नौकरशाही सिद्धांत में लोक दायित्व और जवाबदेही के सिद्धांतों और राज्य–परिषद द्वारा उन्हें लागू करने से पैदा हुए परिवर्तनों के साथ संरचनात्मक संयोजन स्थापित करने की कोई गुंजाइश नहीं है। ये तमाम आलोचनाएं यह साबित करती हैं कि प्रशासन की बदलती हुई परिस्थितियों और आवश्यकताओं में वेबर के इस प्रशासनिक सिद्धांत का कोई महत्व नहीं है। साइमन और बर्नार्ड ने तो यहां तक साबित किया है कि यदि हम वेबर के संरचनात्मक उपागम का अनुसरण करें तो प्रशासनिक कुशलता बाधित होगी, जबकि अनौपचारिक रिश्तों और गैर–सरकारी व्यवहारों के चलते संगठन की कार्य कुशलता को बढ़ाया जा सकता है।

साइमन और मार्च ने वेबर को गुलिक और उर्विक जैसे शास्त्रीय विचारकों की संगति में शामिल किया है, क्योंकि इन्हीं की तरह वेबर ने भी संगठन में मानव व्यवहार पर ध्यान नहीं दिया। वेबर का आदर्श प्रकार महत्तम कार्य कुशलता हासिल नहीं कर सकता, क्योंकि वह नौकरशाही की संरचना पर अधिक जोर देते हैं न कि मनुष्यों पर जिसे नौकरशाही की यह संरचना निमित करनी होती है।

फिलिप सेल्जनिक और अन्य वेबर की उस शक्ति की उपेक्षा के लिए आलोचना करते हैं जो शक्ति प्रशासनिक अधिकारी अपने पद के चलते स्वयं ग्रहण कर लेता है और अपनी सामाजिक स्थिति की चिंता करता है। अंत में वह अपनी शक्ति को लेकर इतना उलझ जाता है कि सिर्फ इसी की वृद्धि में अपना ध्यान केन्द्रित करने लगता है। इसी में वह व्यस्त रहने लगता है जिसके कारण संगठन के घोषित लक्ष्य उलट जाते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी एक नौकरशाह के लिए तटस्थ रह पाना मुश्किल होता है। साथ ही, इर्द–गिर्द व्यापक राजनीतिक गतिविधियों के मौजूद रहने के कारण उसका व्यक्ति निरपेक्ष रह पाना भी कठिन होता है।

इसमें भी शक है कि वेबर ने विकास प्रशासन के लिए जिन योग्यता के निर्दिष्ट क्षेत्रों की बात कही है, वह विचारक (वेबर) की कल्पना के मुताबिक मौजूद ही हों। विकास प्रशासन नित्य नई चुनौतियों का सामना करता है। एक प्रशासक इन चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना करके ही अपनी सेवाओं को उचित सिद्ध कर सकता है।

वेबर की, पदसोपान के सिद्धांत के कारण, कठोरता के साथ चिपके रहने की भी आलोचना हुई है, क्योंकि यह सिद्धांत प्रशासन में, आपसी विश्वास रखने के संबंध में, कोई योगदान नहीं करता, भले ये संबंध अन्तसांगठनिक हों या फिर अन्तर्वैयक्तिक। इस सिद्धांत में कई खतरे मौजूद हैं जो कि आधुनिक प्रशासन के संदर्भ में विनाशकारी हैं। पहला खतरा तो वरिष्ठ अधिकारियों के एकाधिकारवाद का है जो कि टीम भावना के साथ काम करने की संगठनात्मक आवश्यकता के लिए घातक है। यह विभाजनकारी हथियार हैं जो नौकरशाही को एक सुसंहत टीम बनने से रोकता है।

वेबर ने जिन दस्तावेजों को अपनी तार्किक नौकरशाही के लिए महत्वपूर्ण बताया है उनका भी प्रभाव नकारात्मक हो सकता है, विशेषकर कल्याणकारी नौकरशाही के संदर्भ में जो कि विकास के लिए प्रतिबद्ध होती है। इसकी पहली वजह तो यह है कि इससे विशेषज्ञ फाइलों में डूबकर 'महिमामंडित् क्लर्क' बन जाता है। इसकी दूसरी वजह यह है कि इससे तमाम मौखिक विमर्शों को भी रिकार्ड करना पड़ता है। फलस्वरूप औपचारिकता बहुत बढ़ जाती है। ये दोनों प्रवृत्तियां नौकरशाही संगठन की कार्यक्षमता तथा प्रभावशीलता को बाधित करती हैं।

इस तरह सारांश रूप में वेबर के आलोचक वेबरियन मॉडल की आलोचना तीन प्रमुख बातों को लेकर करते हैं जो निम्नलिखित हैं

1. मॉडल की तार्किकता विवादित है। इसके विवादित होने की दो वजहें हैं। एक तो उन घटकों के कारण जो इसमें शामिल नहीं किए गए और दूसरी वजह इसमें आंतरिक सुसंगतता का न होना है।
2. नौकरशाही जिस सीमा तक तार्किक हो सकती है उसे उन सांस्कृतिक परिस्थितियों पर निर्भर माना गया है जिनमें वह अवस्थित होती है। यह स्वीकार करते हुए कि पूरी दुनिया में तार्किक नौकरशाही है, आलोचकों का मानना है कि उनमें भिन्न–भिन्न विशेषताएं होती हैं जो वेबर के मॉडल से भिन्न हैं। और.
3. वेबर ने जिस प्राथमिक आधार पर अपने आदर्श प्रकार को खड़ा किया था आलोचक उस आधार को ही अमान्य ठहराते हैं। कार्ल फ्रायड्रिच ने विवेचित किया है कि ''आदर्श'' और ''प्रकार'' जैसे शब्द कैसे एक–दूसरे को खारिज करते हैं।

निष्कर्ष – वेबर के आलोचकों ने तर्क दिया है कि नौकरशाही के वेबरियन मॉडल में अनुभवजन्य वैधता की कमी है, विशेषकर तब जब इसे आधुनिक प्रशासन के संदर्भ में रखकर देखा जाता है। लेकिन वेबर ने अपने आदर्श प्रकार को जर्मनी की तात्कालिक परिस्थितियों के हिसाब से बनाया था, इसलिए ऐसा कहना कि यह आधुनिक परिस्थितियों के लिए अनुकूल नहीं है, अनुचित है क्योंकि 20वीं शताब्दी की शुरुआत में वेबर सहित .. किसी को भी यह भान नहीं था कि अगले पांच–छह दशकों में समाज के स्वरूप में इस कदर आमूल–चूल परिवर्तन हो जाएगा। अगर वेबर कहते हैं कि उनका कानूनी–तार्किक मॉडल श्रेष्ठ और स्थायी है तो हमें याद रखना चाहिए कि वे यह बात पारंपरिक और चमत्कारिक संगठनों के साथ उनकी तुलना के बाद कह रहे थे।

जैसा कि मार्टिन एलब्रो ने इंगित किया है, हमें यह बात मानने की गुंजाइश भी रखनी चाहिए कि वेबर ने जर्मन में लिखे गए अपने लेखों में 'कार्य कुशलता' और 'तार्किक' शब्दों का इस्तेमाल भिन्न अर्थ और संदर्भ में किया होगा। और इसी वजह से हो सकता है कि वेबर 'कुशलता' शब्द के सभी अर्थों और आयामों से परिचित न हों। वेबर मॉडल की नौकरशाही की जिन अन्य वजहों से आलोचनाएं की जाती हैं उनमें से एक है वेबर का औपचारिकता पर ज्यादा जोर देना। एलब्रो ने ठीक ही कहा है, ''औपचारिक तार्किकता आज के प्रशासन की प्रबंध तकनीक में हुई उन्नति के कारण कई गुना ज्यादा बढ़ गई है।''

आज हम व्यवहार में देखते हैं कि दुनिया के सभी समाज वेबर को सही साबित कर रहे हैं, क्योंकि वेबर ने कहा था कि एक बार जो समाज नौकरशाही से शासितं हो चुका वह इसे कभी नहीं त्याग पाएगा। हम देखते हैं कि भारत सहित तमाम अफ्रो–एशियाई देश विदेशी शासन से तो मुक्त हो गए मगर ये देश इन औपनिवेशिक देशों द्वारा स्थापित नौकरशाही व्यवहारों से मुक्त नहीं हो पाए। – निःसंदेह वेबर के मॉडल में नकारात्मक और सकारात्मक दोनों ही तत्व हैं। वेबर के मॉडल में योग्यता के माध्यम से चयन और तकनीकी अहर्ताएं, पदधारियों द्वारा सरकारी पद पर कब्जे करने का पूर्ण अभाव आदि तत्व सकारात्मक तत्वों की श्रेणी में आते हैं, जबकि निर्वैयक्तिक आदेश नियम, सक्षमता की परिधि, पदसोपान, तकनीकी नियम, लिखित दस्तावेज जैसे तत्व नकारात्मकता की श्रेणी में आते हैं।

चूंकि मॉडल में नकारात्मक तत्वों को अधिक तरजीह दी गयी है इसलिए इसके सकारात्मक तत्व नकारात्मक की तेज प्रवाह में बह गए हैं। – यह ध्यान देने की बात है कि जो लोग वेबर मॉडल की नौकरशाही की आलोचना कर रहे हैं वे वास्तव में वेबर की आलोचना नहीं कर रहे हैं, बल्कि आज की नौकरशाही की आलोचना कर रहे हैं, जो कि कमोबेश वेबर के मॉडल को ही प्रतिबिंबित करती है। इस तरह वे नौकरशाहीकरण की पूरी तरह समाप्ति या उसकी शक्ति को कम करने की बात करते हैं। मगर यह महज काल्पनिक लगता है। आजकल प्रशासन के विद्यार्थियों से लेकर आंतरिक शोध दलों तक ने जिस एक चीज को केन्द्रित किया है, वह है प्रशासन पर नौकरशाही का प्रभाव। प्रशासकों को परिवर्तन अभिकर्ता के रूप में तथा नौकरशाही को आधुनिकीकरण के उत्प्रेरक के रूप में समझा जाता है। जब तक प्रशासन के अध्ययन में यह विचार प्रबल रहेगा तब तक नौकरशाही में व्यापक रुचि बनी रहेगी, और वेबर के मॉडल पर विश्लेषण तथा चर्चा होती रहेगी।

अध्याय – 12

मेरी पार्कर फौलेट

(MARY PARKER FOLLETT)

"-----नेता वह व्यक्ति होता है जो अपने समूह को ऊर्जावान कर सकता है, जो यह जानता है कि कैसे पहल को प्रोत्साहित किया जाए, जो यह प्रर्दशित कर सके कि आदेश परिस्थिति के साथ एकीकृत होता है।" –मैरी पार्कर फौलेट

प्रबन्ध जगत् में मिस मैरी पार्कर फौलेट का अपना अलग ही स्थान है । उन्हें 'प्रबन्ध में भविष्यवक्ता' की संज्ञा दी जाती है। फौलेट ने प्रशासन और प्रबन्ध पर काफी कुछ लिखा पर दुर्भाग्य से जीते–जी उनको अधिक प्रसिद्धि प्राप्त न हो सकी और उनके कार्य भुला दिए गए। परन्तु फौलेट का प्रबन्धकीय दृष्टिकोण काफी विशिष्ट था और उन्होंने वह सब बहुत पहले ही बता दिया था जो कि बाद के अध्ययनों से स्पष्ट होता है। फौलेट ने बड़ी ही सरल और बोधगम्य शैली में अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किए। उर्विक एवं ब्रेच लिखते हैं कि फौलेट ने अपने विश्वासों को दर्शाने के लिए जीवन के हर क्षेत्र से उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जैसे– सरकार के कार्य, उद्योग, व्यापार, घर, युद्ध, शान्ति, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ आदि। उनकी लेखनी व्यावहारिक बुद्धि, अन्तःप्रज्ञा की गहरी सोच, अविभागीयकृत सोच और लोकतान्त्रिक गत्यात्मकता का भण्डार है। यह उल्लेखनीय है कि प्रशासन की शास्त्रीय विचारधारा और वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा के प्रतिपादक फौलेट के दर्शन से काफी प्रभावित थे। इसलिए ड्वाइट वाल्डो कहते हैं कि प्रशासन की वर्तमान प्रवृत्तियों को समझने के लिए हमें फौलेट की रचनाओं का अध्ययन करना चाहिए।

अमेरिका के बोस्टन शहर में 1868 में जन्मी मैरी पार्कर फौलेट की प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा बोस्टन की अकादमी में हुई। इसके पश्चात् फौलेट की रुचि इतिहास, राजनीति – शास्त्र, कानून और दर्शनशास्त्र पढ़ने में अधिक थी। 1912 में फौलेट बोस्टन के पदस्थापन ब्यूरो समिति की सदस्या बन गईं। इस प्रकार वे उद्योग के सम्पर्क में आईं। आपने इनके प्रबन्ध पर काफी कुछ लिखा। 65 वर्ष की आयु में मिस फौलेट का 1933 में देहावसान हो गया और प्रबन्ध ने वह विचारक खो दिया जिसके कार्यों ने उसे गहरे रूप से प्रभावित किया। फौलेट की अन्तदृ र्ष्टि इतनी तीक्षण थी कि उन्होंने जो विचार काफी पहले ही प्रकट कर दिए थे वे 1930 के बाद के हॉथीन प्रयोगों से पुष्ट हुए। इसी कारण वे प्रबन्ध की भविष्यवक्ता कहलाती हैं।

फौलेट ने कई पुस्तकें लिखीं। उनके कुछ प्रमुख लेखन–कार्य इस प्रकार हैं• The Speaker of the House fo Representatives (1896) • The New State (1918) Creative Experience (1924) • Dynanic Administration: The Collected Papers of Mary Parker Follett (Ed- by Met Calf and Urwick (1940) (Ed- by Elliot Fox and Urwick (1973) (2^{nd} ed.) • Freedom and Coordination&Lectures in Business Organization (1949) (ed- by Urwick) .

फौलेट ने इतना कुछ लिखा कि यह सम्भव नहीं है कि उनके सभी विचारों को जाना जा सके। फौलेट की प्रथम रचना 'दी स्पीकर ऑफ द हाउस ऑफ रिप्रजेन्टेटिव्ज' 1896 में प्रकाशित हुई। यह इतनी उत्कृष्ट रचना थी कि अमरीकी राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने इसे सभी द्वारा पढ़ा जाना अपरिहार्य बताया। 1918 में उनकी पुस्तक 'द न्यू स्टेट्स' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को भी काफी ख्याति प्राप्त हुई और बहुलतावाद की वकालत करने वालों के रूप

में फौलेट को पहचाना गया। 1924 में 'क्रिएटिव एक्सपीरियेन्स' प्रकाशित हुई जिसमें संगठन में संघर्षों पर ध्यान केन्द्रित किया गया । फौलेट की पुस्तक 'डायनेमिक एडमिनिस्ट्रेशन का प्रकाशन उनके मरणोपरान्त 1941 में हुआ। इसका सम्पादन उर्विक और मेटकॉफ ने किया। स्थान की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए फौलेट के अति महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक विचारों को ही अध्याय में शामिल किया जा सका है।

रचनात्मक संघर्ष (Constructive Conflict):– मैरी पार्कर फौलेट का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान संघर्षों के रचनात्मक पहलुओं पर विचारों के रूप में माना गया है। यहाँ संघर्षों से तात्पर्य संगठन में उत्पन्न संघर्षों से है। संघर्ष की स्थिति व्यक्ति के जीवन में कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है। आज हम संघर्ष के युग में जी रहे हैं। संगठन केवल व्यक्ति के जीवन तक ही सीमित नहीं है अपितु संगठनों में भी संघर्ष व्याप्त है। संघर्ष एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति या इकाई किसी उद्देश्य के लिए दूसरे को रोकने का प्रयास करती है जिसके परिणामस्वरूप दूसरा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में या अपने हितों के संवर्द्धन में सफल नहीं हो पाता है। साधनों की सीमितता, लक्ष्यों की विविधता, व्यक्तित्वों में भेद, परिवर्तन, संचार की कमी आदि के कारण संगठनों में संघर्षों का जन्म होता है। सामान्यतया संघर्षों को नकारात्मक दृष्टि से देखा जाता है परन्तु फौलेट ने संघर्ष के रचनात्मक पहलुओं की ओर प्रबन्ध का ध्यान आकर्षित किया।

मैरी पार्कर फौलेट 'रचनात्मक संघर्ष' का विचार प्रस्तुत करती हैं और संघर्षों को संगठन की प्रत्येक क्रिया में एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उनका विचार है कि संघर्ष न तो अच्छा है और न ही बुरा । बल्कि यह तो एक सामान्य घटना है जिसकों बिना किसी भावना और नैतिक पूर्व निर्णय के रूप में स्वीकार करना चाहिए। 'डायनैमिक एडमिनिस्ट्रेशन' में फौलेट कहती हैं कि संघर्ष कोई युद्ध की स्थिति नहीं होती। यह तो सिर्फ मतभेदों की उपस्थिति को दर्शाता है। ये मतभेद राय अथवा हितों के हो सकते हैं। राय और हितों के मतभेद संगठन में केवल नियोक्ता और कर्मचारी के बीच, निदेशकों के बीच भी उपस्थित हो सकते हैं। चूँकि व्यक्तिगत मतभेद कभी भी समाप्त नहीं किए जा सकते अतः संगठनों से संघर्षों को कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। जब संघर्ष अपरिहार्य हो जाए तो इसका सकारात्मक उपयोग लेने की कोशिश करनी चाहिए। फौलेट कहती हैं हर चमक घर्षण से पैदा होती है। जब हम वायलिन पर घर्षण पैदा करते हैं तभी संगीत प्राप्त होता है और जब हमने घर्षण से अग्नि का आविष्कार किया तो हमने असभ्य अवस्था को छोड़ दिया।

फौलेट ने संघर्षों को रचनात्मक बनाने की 3 विधियों का उल्लेख किया– प्रभुत्व, समझौता तथा एकीकरण।

(i) प्रभुत्व (Domination) : प्रभुत्व को फौलेट संघर्ष के समाधान का प्रथम तरीका बताती हैं। प्रभुत्व का आशय एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष पर जीत प्राप्त करना है। प्रभुत्व संघर्ष समाधान का सबसे आसान तरीका है परन्तु यह थोड़े समय के लिए ही सुविधाजनक हो सकता है। चूँकि प्रभुत्व में एक पक्ष दूसरे पक्ष पर विजय प्राप्त करता है अतः स्वभाविक है कि इसमें दबाव, बल प्रयोग तथा दूसरे के हितों का अतिक्रमण शामिल है अतः यह संघर्ष के समाधान का स्थाई तरीका नहीं हो सकता क्योंकि पराजित पक्ष सदैव बदला लेने की फिराक में रहता है। यह बात हम प्रथम विश्वयुद्ध के सन्दर्भ में समझ सकते हैं। इसमें विजेता पक्ष का पराजितों पर प्रभुत्व स्थापित हो गया और संघर्ष कुछ समय के लिए दब गया परन्तु पुनः अवसर आते ही पराजित पक्ष ने पुनः संघर्ष (द्वितीय विश्वयुद्ध) प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार प्रभुत्व संघर्ष के समाधान का एक अल्पकालीन साधन ही हो सकता है।

(ii) समझौता (Compromise) : समझौता संघर्ष समाधान का वह तरीका है जिसमें प्रत्येक पक्ष शान्ति स्थापित करने के लिए अपनी कुछ माँगों का परित्याग करके संघर्ष से समझौता कर लेता है । संघर्ष के समाधान का समझौते का तरीका प्रभुत्व की तुलना में अधिक प्रभावी होता है क्योंकि समझौते में किसी पक्ष को दबाया नहीं जाता और स्वेच्छा से दोनों पक्ष अपनी इच्छाएँ त्यागने को तैयार हो जाते हैं । अतः कोई भी पक्ष इसे पसन्द नहीं करता है वरन् समझौते मजबूरी में किए जाते हैं। उदाहरण के लिए भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर संघर्ष के समाधान

के लिए 'ताशकन्द सन्धि' या 'शिमला समझौते' जैसी समझौतात्मक कार्यवाही हुई परन्तु ये दोनों ही कश्मीर संघर्ष का स्थाई समाधान प्रस्तुत नहीं कर सके और संघर्ष पुनः पैदा हो गया। समझौता तभी सफल रह सकता है जबकि दोनों पक्ष ईमानदारी से समझौते का सम्मान करें, जो कि वस्तुतः काफी कठिन होता है।

(iii) एकीकरण (Integration) : संघर्ष समाधान के तीसरे तरीके के रूप में फौलेट एकीकरण का जिक्र करती हैं। फौलेट संघर्ष समाधान के सबसे सन्तोषजनक और प्रभावी उपाय के रूप में एकीकरण की पहचान करती हैं। एकीकरण में दोनों पक्षों की इच्छाओं को एकीकृत कर दिया जाता है और किसी भी पक्ष को अपनी इच्छाओं का परित्याग नहीं करना पड़ता। फौलेट समझौते से अधिक प्रभावी एकीकरण को मानती हैं क्योंकि एकीकरण कुछ नया बनाता है, आविष्कार करने को प्रेरित करता है तथा नए मूल्यों का इससे जन्म होता है। एकीकरण संघर्ष की जड़ों तक जाता है और इसके स्थाई समाधान का प्रयास करता है। एकीकरण का उदाहरण देते हुए फौलेट कहती हैं। हॉवर्ड विश्वविद्यालय के एक छोटे से कमरे की खिड़की को एक महाशय खोलना चाहते थे जबकि मैं उसे बन्द ही रखना चाहती थी। हमने अगले कमरे की खिड़की खोल दी जिसमें कोई भी नहीं था। यह समझौता नहीं था क्योंकि हम दोनों को बिना कोई इच्छा छोड़े वह मिल गया जो हम चाहते थे। मैं बन्द कमरा चाहती थी क्योंकि मैं नहीं चाहती थी कि उत्तरी वायु सीधे मेरी ओर बहे, इसी प्रकार दूसरा व्यक्ति भी किसी विशिष्ट खिड़की को नहीं खोलना चाहता था। वह तो सिर्फ कमरे में अधिक वायु चाहता था।

फौलेट जहाँ एकीकरण के लाभों का जिक्र करती हैं वहीं इसकी प्राप्ति में आने वाली कठिनाइयों से भी अनभिज्ञ नहीं हैं। हर तरह के संघर्ष का समाधान एकीकरण से सम्भव नहीं हो सकता । फौलेट उदाहरण देते हुए कहती हैं कि जब दो व्यक्ति किसी एक ही महिला से विवाह करना चाहते हों तो वहाँ एकीकरण की कोई गुंजाइश नहीं होती। कुछ मामलों में तो एकीकरण असम्भव ही होता है पर फिर भी इसके लाभों के कारण वह प्रभुत्व और समझौते से अधिक प्रभावी और स्थाई तरीका है।

फौलेट एकीकरण प्राप्त करने के चरणों का उल्लेख करते हुए इसके निम्न चरण बताती है

(1) एकीकरण के प्रथम चरण के रूप में फौलेट कहती हैं कि हमें सर्वप्रथम अपने मतभेदों को स्पष्ट करना चाहिए। इसलिए सर्वप्रथम हमें संघर्ष में निहित वास्तविक मुद्दों की स्पष्ट पहचान करनी आवश्यक है। (2) दूसरे चरण में हमें संघर्ष की समस्या के समग्र को कुछ भागों में तोड़ना पड़ता है। इसके लिए हमें संघर्ष में निहित माँगों को पहचान कर उनको संघटक भागों में बाँटना पड़ता है। इस चरण में उन माँगों को अन्य माँगों से अलग कर लिया जाता है जिनकी पूर्ति आवश्यक होती है। (3) संघर्ष समाधान का तीसरा चरण संघर्ष का पूर्वानुमान है। इसमें संघर्ष के प्रति भिन्न तरीके से जवाब दिया जाता है । इसके लिए फौलेट एक उदाहरण देती हैं। वे कहती हैं कि एक व्यक्ति को कार चलाना अच्छा लगता है जबकि उसकी पत्नी पैदल चलना पसन्द करती है। वह व्यक्ति अपनी पत्नी के उस प्रत्युत्तर को अच्छी तरह जानता है जब रविवार को सुबह खूब देर तक टेनिस खेलने के बाद काफी थक जाने के कारण उसकी पत्नी का होता है । फौलेट केवल प्रत्युत्तरों के पूर्वानुमान को ही पर्याप्त नहीं मानतीं अपितु उनके निर्माण की भी वकालत करती हैं। प्रत्युत्तर रेखीय व चक्रिक हो सकते हैं। चक्रिक प्रत्युत्तर संघर्ष पर अधिक अच्छे से प्रकाश डालता है। फौलेट के मत में चक्रिक व्यवहार (Circular Behaviour) रचनात्मक संघर्ष की कुंजी है।

एकीकरण मे बाधाएँः– (1) एकीकरण के लिए उच्च बुद्धि, गहन बोध तथा श्रेष्ट खोजी प्रवृत्ति की आवश्यकता होती है। जब तक बुद्धिमत्ता और खोजी प्रवृत्ति नहीं होगी संघर्षों का एकीकरण से समाधान मुश्किल होता है। (2) एकीकरण की दूसरी बाधा यह है कि लोग प्रभुत्व की स्थिति का आनन्द लेते हैं और जब तक प्रभुत्व रहता है एकीकरण मुश्किल होता है। (3) समस्याओं को सैद्धान्तिक जामा पहना देना भी एकीकरण की एक बाधा है। (4) उपयोग में ली गई भाषा एकीकरण के मार्ग में चौथी बाधा है। फौलेट के मत में भाषा मेल कराने वाली होनी चाहिए न कि संघर्षों को और बढ़ाने वाली। (5) नेताओं द्वारा पैदा किया गया अनावश्यक प्रभाव एकीकरण की पाँचवीं

बाधा है। (6) नेताओं का अभाव एकीकरण की सबसे बड़ी बाधा है। वे कहती हैं कि संगठन के प्रबन्धकों और श्रमिकों को सहकारी सोच के विकास की शिक्षा देनी चाहिए। इस प्रकार फौलेट संघर्षों के विविध आयामों का उल्लेख करते हुए रचनात्मक संघर्ष का विचार प्रस्तुत करती हैं और संघर्षों के रचनात्मक उपयोग की वकालत करती हैं। **संगठन में आदेश (Orders in Organization):–** आदेश देना संगठन का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है । मैरी पार्कर फौलेट संगठन में आदेश देने के विविध पहलुओं का परीक्षण करती है तथा 'निवैयक्तिक आदेश' (Depersonglising Orders) का विचार प्रस्तुत करती हैं। वे इस बारे में स्थिति के नियम' (Law fo the Situation) का भी प्रतिपादन करती हैं।

फौलेट आदेश देने के 4 महत्त्वपूर्ण चरण बताती हैं–प्रथम, एक सचेत अभिवृत्ति जो उन सिद्धान्तों को व्यवहार में लाती है जिसके जरिए किसी मामले पर कार्यवाही करना सम्भव होता है। द्वितीय, एक जिम्मेदाराना अभिवृत्ति जिससे यह तय हो कि किन सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए। तृतीय, एक प्रयोगात्मक अभिवृत्ति जिससे प्रयोग किए जाएँ और परिणाम देखे जाएँ तथा चतुर्थ, परिणामों को एकत्रित करना।

प्रायः लोग आदेश देने सम्बन्धी सिद्धान्तों को जाने बिना ही आदेश देते हैं। सर्वप्रथम – आदेश देने वाले को उन सिद्धान्तों की जानकारी होनी आवश्यक है जिनके आधार पर आदेश दिए जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि दिए गए हर आदेश का पालन किया जाएगा। आदेश की पालना कई कठिनाइयों से घिरी है। कई बार अपनी पुरानी आदतों के कारण लोग आदेशों का पालन नहीं करते क्योंकि वे अपनी आदतों के विपरीत आदेश पालन नहीं करना चाहते। आदेश देने से पहले नियोक्ता को आदेशों की पालना सुनिश्चित करने के लिए कर्मचारियों की 'आदतों' के निर्माण के साधनों और तरीकों पर विचार करना चाहिए। इसके लिए फोलेट निम्न सुझाव देती हैं

(i) अधिकारियों को नई विधियों की वांछनीयता देख लेनी चाहिए। (ii) ऑफिस के नियम इस प्रकार परिवर्तित हों ताकि अधिकारी नई विधियों को अपना सकें। (iii) पहले ही कुछ लोगों को नई विधियाँ अपनाने के लिए विश्वास में ले लिया जाना चाहिए ताकि एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा सके। (iv) अन्तिम बात अभिव्यक्त किए जाने वाले व्यवहार को तीव्र बनाना कहते हैं। यह आदेशों की स्वीकृति का रास्ता तैयार करता है। फौलेट अनुसार आदेशों के प्रत्युत्तर उन स्थानों और परिस्थितियों पर निर्भर रहता है जिनमें आदेश दिए जाते हैं। फौलेट कहती हैं किसी आदेश के प्रति अनुकूल प्रत्युत्तरों की शक्ति उस दूरी के व्युत्क्रमानुपाती (Inverse Ratio) होती है जो कि आदेशों द्वारा तय की जाती है। अर्थात् यदि आदेश लम्बी दूरी तय करके किसी व्यक्ति तक पहुँचता है तो उसके अनुकूल प्रत्युत्तर की शक्ति कम हो जाती है इसी प्रकार आदेश देने का तरीका भी आदेशों की पालना को प्रभावित करता है।

'आदेश देने' तथा 'आदेश न देने' के मामले में मालिकानापन (Bossism) से बचने के लिए फौलेट 'आदेशों के निर्वैयक्तिकरण' का सुझाव देती हैं तथा 'स्थिति के नियम' का प्रतिपादन करती हैं। फौलेट कहती हैं कि किसी को अन्यों को आदेश नहीं देना चाहिए बल्कि दोनों को 'स्थिति' (Situation) से ही आदेश ग्रहण करने चाहिए। जब सभी व्यक्ति स्थिति से ही आदेश ग्रहण करें तो आदेश देने तथा आदेश के पालन करने का सवाल ही पैदा नहीं होता है। उनके मत में जैसी स्थिति माँग करती है उसी के अनुसार निर्णय लेना चाहिए। इस बात का सम्बन्ध सिर्फ इस बात से है कि सत्ता 'स्थिति' से जुड़ी होती है। वह एक उदाहरण देती हैं कि अपनी माँ के कहने पर उसका लड़का पहले तो पानी की बाल्टी लाने से मना कर देता है पर बाद में ले आता है। इस मामले में वह आदेश पर गुस्सा होता है पर स्थिति की माँग को पहचानता है। चूँकि स्थिति सदैव परिवर्तनशील होती है अतः आदेश भी कभी स्थिर नहीं रह सकते। इस प्रकार फौलेट संगठन की एक महत्त्वपूर्ण समस्या– आदेश देने का विस्तार से परीक्षण करती हैं और 'स्थिति' को आदेशों का मूल मानती हैं।

समन्वय (Coordination):– समन्वय प्रबन्ध का अति महत्त्वपूर्ण कार्य है। फौलेट के मत में समन्वय का अभाव संगठन की मुख्य कमजोरी होती है और समन्वय संगठन के विभिन्न भागों को सामंजस्यपूर्ण तरीके से व्यवस्थित

करना है। फौलेट प्रभावी समन्वय के निम्न सिद्धान्त प्रतिपादित करती हैं। (i) प्रत्यक्ष सम्पर्क का सिद्धान्त : संगठन में समन्वय स्थापना के सचेत प्रयास किए जाते हैं। कुछ व्यक्तियों को समन्वय स्थापना की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। फौलेट के प्रत्यक्ष सम्पर्क के सिद्धान्त के अनुसार समन्वय की जिम्मेदारी रखने वाले व्यक्तियों को एक–दूसरे के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क रखने चाहिए। यह समन्वय की प्रक्रिया को सुगम बनाता है। इसके लिए फौलेट क्षैतिज संचार अर्थात् समस्तरीय अधिकारियों के बीच संचार को भी उतना ही महत्त्वपूर्ण मानती हैं जितना की उर्ध्वाधर। (ii) प्रारम्भिक अवस्थाओं का सिद्धान्त : समन्वय संगठन का सार है अतः फौलेट सुझाव देती हैं कि समन्वय की स्थापना नीति निर्माण की प्रक्रिया के साथ ही शुरु हो जानी चाहिए क्योंकि बाद में इसकी स्थापना काफी कठिन हो जाती है। (iii) पारस्परिक सम्बन्धों का सिद्धान्त : इस सिद्धान्त के अनुसार स्थिति के विभिन्न घटकों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध पाए जाते हैं। समन्वय की स्थापना करते समय इन पारस्परिक सम्बन्धों का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि ये समन्वय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। (iv) सतत् प्रक्रिया का सिद्धान्त : समन्वय एक सतत् प्रक्रिया है जो संगठन में प्रारम्भ से लेकर आगे तक चलती रहती है अतः फौलेट समन्वय स्थापना की स्थाई मशीनरी की वकालत करती है। इस प्रकार की स्थाई मशीनरी काफी उपयोगी रहती है। इसके साथ–साथ फौलेट सूचना आधारित सतत् अनुसन्धान के महत्त्व पर भी जोर देती हैं।

नेतृत्व (Leadership):– नेतृत्व संगठन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। कोई संगठन कुशल नेतृत्व के अभाव में अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकता। नेतृत्व पर पर्याप्त अध्ययन हो चुके हैं परन्तु फौलेट का नेतृत्व विषयक योगदान मौलिक और महत्त्वपूर्ण है । फौलेट मानती हैं कि आज मानवीय सम्बन्धों में परिवर्तन तथा प्रबन्ध में विकास के कारण नेतृत्व की परम्परागत विचारधारा बदल रही है। फौलेट कहती हैं कि नेता न तो संगठन का अध्यक्ष होता है और न ही विभाग का प्रमुख, परन्तु नेता वह होता है जो स्थिति के चारों ओर देख सकता है जो इसे किन्हीं निश्चित प्रयोजनों तथा नीतियों से जोड़कर देखता हो, जो इसे आने वाली स्थितियों से जुड़ा हुआ देखता हो, तथा जो यह जानता हो कि एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक कैसे जाया जाता है। फौलेट कहती हैं नेता वह व्यक्ति होता है जो अपने समूह को ऊर्जावान कर सकता है, जो यह जानता है कि कैसे पहल को प्रोत्साहित किया जाए जो यह प्रदर्शित कर सके कि आदेश स्थिति के साथ एकीकृत होता है। फौलेट के मत में नेता के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं। (i) समन्वय : समन्वय संगठन का आवश्यक तत्त्व है अतः नेतृत्व की क्षमता इसकी समन्वय स्थापना की योग्यता को प्रदर्शित करती है। (ii) उद्देश्यों को परिभाषित करना : प्रत्येक संगठन अपने निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रयासरत रहता है। इन उद्देश्यों या प्रयोजन का निर्धारण नेतृत्व द्वारा ही किया जाता है। (iii) पूर्वानुमान : भावी स्थिति का पूर्वानुमान करने की नेतृत्व की योग्यता संगठन के लिए उपयोगी सिद्ध होती है। फौलेट का यह स्पष्ट रूप से मानना था कि नेता केवल जन्मजात नहीं होते अपितु संगठन और प्रबन्ध में उन्हें शिक्षण और प्रशिक्षण देकर तैयार भी किया जा सकता है।

फौलेट 3 प्रकार के नेतृत्व की पहचान करती हैं। (i) पद से सम्बन्धित नेतृत्व : फौलेट के अनुसार पद से सम्बन्धित नेतृत्व किसी भी संगठन में औपचारिक सत्ता से सम्बन्धित होता है। संगठन में जिस व्यक्ति को सत्ता प्राप्त होती है उसे संगठन में नेतृत्व का कार्य भी करना होता है। यह नेतृत्व औपचारिक प्रकृति का होता है। (ii) व्यक्तित्व से सम्बन्धित नेतृत्व : इस शैली का सम्बन्ध नेता के व्यक्तित्व से है। जिस व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है उसके नेतृत्व को बड़ा आसानी से स्वीकार कर लिया जाता है। वेबर की करिश्माई सत्ता से इसका सम्बन्ध होता है। (iii) प्रकार्य से सम्बन्धित नेतृत्व : इसका अर्थ ज्ञान के नेतृत्व से है (Knowledge Leadership)। आधुनिक संगठनों में विशिष्ट ज्ञान रखने वाले नेता ही अधिक प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं। यद्यपि व्यक्तित्व नेतृत्व में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है पर फौलेट मानती हैं कि व्यक्तित्व नेतृत्व से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रकार्य–नेतृत्व होता है। वे मानती हैं कि किसी भी संगठन की सफलता उसकी इस बात पर निर्भर करती है कि वह संगठन प्रकार्य–नेतृत्व

को पूर्णतः कार्य करने देने योग्य लचीलापन रखता हो। इस प्रकार फौलेट ने 'परिस्थितिवाद उपागम' के उपयोग में आने से पहले ही अमरीकी जीवन में 'प्रकार्य–नेतृत्व' के उदय की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

शक्ति एवं सत्ता (Power and Authority) शक्ति और सत्ता दो पृथक–पृथक् अवधारणाएँ हैं। शक्ति एक व्यक्ति की काम करवाने, कारणात्मक एजेन्ट बनने तथा परिवर्तन शुरु करने की क्षमता को प्रदर्शित करती है। फौलेट दो प्रकार की शक्ति की पहचान करती हैं– किसी के ऊपर शक्ति (Power Over) तथा किसी के साथ शक्ति (Power With)। किसी के ऊपर शक्ति दबावात्मक होती है जबकि किसी के साथ शक्ति सहयोगात्मक क्रिया को जन्म देती है। किसी के ऊपर शक्ति अपनी इच्छाओं को दूसरों पर थोपना है। इस कारण फौलेट इसे अधिक अच्छा नहीं मानती हैं। फौलेट का विचार है कि स्थिति के नियम, चक्रिक व्यवहार तथा एकीकरण के उपयोग से 'किसी के ऊपर' शक्ति को कम किया जा सकता है। इसके विपरीत 'किसी के साथ शक्ति' का अर्थ हितों में एकता व सहयोग पैदा करना है। किसी के साथ शक्ति, कहीं अधिक बेहतर होती है क्योंकि यह बेहतर समझ का विकास कर सकती है, संघर्ष तथा घर्षण को कम कर सकती है और सहयोगी प्रयासों को प्रोत्साहित कर सकती है। फौलेट यह मानती हैं कि किसी के ऊपर शक्ति से पूरी तरह छुटकारा तो नहीं पाया जा सकता पर इसे कम अवश्य किया जा सकता है। फौलेट अनुसार शक्ति का न तो प्रत्यायोजन किया जा सकता है, न इसे किसी दूसरे को सौंपा जा सकता है और न इसे किसी से छीना जा सकता है क्योंकि यह किसी व्यक्ति की क्षमता और इच्छा का परिणाम होती है। पर वे मानती हैं कि शक्ति के विकास की स्थितियों की रचना की जा सकती है।

प्राधिकार या सत्ता पर फौलेट के विचार अन्य विचारकों से काफी भिन्नता रखते हैं। फौलेट के अनुसार सत्ता 'निहित शक्ति' को कहा जाता है अर्थात् शक्ति को विकसित करने तथा उसे लागू करने का अधिकार सत्ता कहलाता है। फौलेट कहती हैं कि सत्ता संगठन का आधार नहीं हो सकती क्योंकि इसका प्रयोग एक व्यक्ति अपने अधीनस्थों पर करने की कोशिश करता है इसलिए यह मानवीय गरिमा के खिलाफ होती है। फौलेट 'अन्तिम सत्ता' के विचार को एक भ्रम मानती हैं और कहती हैं कि सत्ता का स्रोत कार्य स्वयं होना चाहिए न कि मुख्य कार्यकारी की सत्ता से इसे निकालना चाहिए । 'कार्य की सत्ता' (Authority of Function) में प्रत्येक व्यक्ति उसे सौंपे गए कार्य से सत्ता प्राप्त करता है। वे कहती हैं कि एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को सत्ता सौंपना सत्ता का प्रत्यायोजन नहीं होता। वे सत्ता के प्रत्यायोजन को एक विचित्र अभिव्यक्ति' (Obsolete Expression) कहती हैं। सत्ता के साथ–साथ फौलेट उत्तरदायित्व को भी कार्य और स्थिति से निकलने वाला मानती हैं। इसलिए वह किस के प्रति उत्तरदायी है' के स्थान पर यह पूछना चाहिए कि वह किस बात के लिए उत्तरदायी है' इसी प्रकार फौलेट उत्तरदायित्व की बहुत विचारधारा या संचयी विचारधारा का समर्थन करती हैं तथा अन्तिम उत्तरदायित्व को भ्रम बताकर इसे अस्वीकार करती हैं।

नियन्त्रण (Control):– लगभग सभी शास्त्रीय सिद्धान्तकारों ने नियन्त्रण को संगठन के एक प्रमुख सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु यहाँ फौलेट के विचार अन्य शास्त्रीय विचारकों से भिन्नता रखते हैं। अन्य शास्त्रीय विचारकों के विपरीत फौलेट 'तथ्य नियन्त्रण' पर 'मानव नियन्त्रण' के बजाय अधिक जोर देती हैं और 'अधि–आरोपित नियन्त्रण' के स्थान पर 'सह–सम्बन्धात्मक नियन्त्रण' की वकालत करती हैं। चूँकि तथ्य स्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं इसी प्रकार स्थितियाँ इतनी जटिल होती हैं कि केन्द्रीय नियन्त्रण को प्रभावी रूप से लागू करना कठिन हो जाता है। इसलिए फोलेट नियन्त्रण क्रियाविधि को संगठन के विभिन्न स्तरों से जोड़ने का सुझाव देती हैं। फौलेट कहती हैं कि एक एकीकृत संगठन स्वविनियमित और स्व–निर्देशित इकाई होता है। इस प्रकार के संगठनों में नियन्त्रण की प्रकृति स्वनियन्त्रण की होती है।

अन्य विचार (Miscellaneous Views) मैरी पार्कर फौलेट ने लोक–प्रशासन को उत्कृष्ट योगदान दिया। फौलेट उन विचारकों में से थीं जो लोक–प्रशासन और निजी प्रशासन में कोई भेद न करते हुए इन्हें एक समान बताती हैं। यद्यपि फौलेट के व्याख्यान निजी उद्योगों के लिए दिए गए थे तथापि उनके निर्धारित उपाय निजी व्यापार के समान

लोक–प्रशासन के क्षेत्र में भी समान रूप से लागू किए जा सकते हैं। वे मानती हैं कि लोक–प्रशासन के लिए 'या तो' (either/or) उपागम अति सरलतावादी है और इस बात की अवहेलना करता है कि मानव समाज स्वयं बहुलतावादी होता है। यह उपागम अति सत्तावादी है। फौलेट मानती हैं कि प्रशासन में 'मेलक क्रिया' (Reconciliation) आवश्यक रूप से समाहित होती है जिसमें व्यक्तियों के साथ–साथ सामाजिक–समूह भी निहित होते हैं। फौलेट संगठनात्मक मानवतावादी विचारक थीं और उन्होंने समूह–गतिशीलता, सत्ता व सहयोग, सहभागिता के महत्त्व आदि को समझने की आधारशिला रखी। फौलेट ने मेयो के हॉथोर्न प्रयोगों से पहले ही संगठन में मानवीय घटकों के महत्त्व को उजागर किया था। फौलेट के विचारों ने प्रबन्ध को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। वे संगठन के शास्त्रीय उपागम को एक दिशावादी तथा मनुष्य को मशीन के रूप में मानने के कारण आलोचना करती हैं।

फौलेट व्यापारिक संगठनों के अध्ययन के मानवीय और मनोवैज्ञानिक उपागम पर जोर देती हैं। उनका दृष्टिकोण काफी मानवतावादी था। उनका मानना था कि किसी भी संगठन की प्रभावशीलता उस संगठन में व्यक्तियों और संगठन के बीच पाए जाने वाले एकीकरण की मात्रा पर निर्भर करती है। फौलेट व्यापार के मानवीय चेहरे पर जोर देती हैं और कहती हैं कि हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम मानवीय पक्ष को यान्त्रिक पक्ष से कभी अलग नहीं कर सकते।

आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation):– फौलेट के विचारों को अति आदर्शवादी मानकर उनकी आलोचना की जाती है। साथ ही उनके विचार प्रबन्धकीय अनुभव और वैज्ञानिक अध्ययनों के परिणाम न होना भी प्रमुख आलोचना है। डी. ग्विशियानी ने लिखा है। उनका दृष्टिकोण विशुद्ध रूप से अनुभवमूलक था तथा उन्होंने संगठन के सामाजिक पहलुओं की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत नहीं की। कुछ विचारक फौलेट को 'शास्त्रीय विचारक' के रूप में मानते हैं जबकि अन्य उनकी यह कह कर आलोचना करते हैं कि उनके विचारों में कुछ भी 'शास्त्रीय नहीं है। फौलेट की यह कहकर भी आलोचना की जाती है कि उन्होंने संगठनों के प्रबन्ध में सामाजिक पहलुओं को नजरअन्दाज किया है। डी. ग्विशियानी पुनः लिखते हैं उन्होंने समझ की कमी, गलतफहमियों तथा व्यक्तिगत गुणों में भिन्नता के कारण उत्पन्न मनोवैज्ञानिक संघों पर ही ध्यान दिया है और सभी सामाजिक और वर्गीय सम्बन्धों को एक तरफ फेंक दिया।

एकीकरण पर फौलेट के विचारों को भी भ्रामक कहकर ग्विशियानी उनकी आलोचना करते हैं। इन आलोचनाओं के बावजूद प्रशासनिक विचारधारा को उनका योगदान श्रेष्ठ और पूर्वानुमान करने वाला माना जा सकता है। हेनरी मेटकॉफ तथा लिंडल उर्विक लिखते हैं।

उनकी अवधारणाएँ अपने समय से काफी आगे थीं। वे आज की विचारधारा से भी आगे हैं। उनके सुझाव उन व्यक्तियों के लिए सोने की खदान के समान हैं जिनकी रुचि किसी उद्यम को चलाने में मानवीय सहयोग की स्थापना और उसके संधारण की समस्याओं में होती है।

'द गोल्डन बुक ऑफ मैनेजमेन्ट' में उर्विक लिखते हैं कि, "यह उनकी विशेष योग्यता थी कि परम्परागत अध्ययन विषय–राज्य या समग्र रूप से समुदाय–से वे प्रगतिशीलता के साथ उद्योग के अध्ययन की ओर ध्यान देते हुए मुड़ी। इस सन्दर्भ में उन्होंने मानवीय संघ और संगठन (विशेषतया उद्योग) के न केवल सिद्धान्त विकसित ही किए अपितु व्यवहार के बड़ी संख्या में व्यापारियों को उनकी समस्याओं को सुलझाने के लिए उन सिद्धान्तों के बारे में विश्वस्त भी किया। उनका उपागम उस सहमति की प्रवृत्ति का विश्लेषण करना था जिस पर कोई भी प्रजातान्त्रिक समूह आधारित होता है। उनके मनोवैज्ञानिक पहलुओं को इन्होंने रेखांकित किया। वे सुझाती हैं कि यह सहमति स्थिर नहीं है अपितु एक सतत् प्रक्रिया है जो व्यक्तियों के विचारों की विवेचना द्वारा नए और जीवन्त समूह विचारों को जन्म देती है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. गुलिक के विभिन्न विचारों का वर्णन करें।
2. फोलेट के विचारों का मूल्यांकन करें।
3. नौकरशाही के वेबरियन प्रतिमान की विवेचना करो।
4. गुलिक के प्रशासनिक सिद्धांतो का वर्णन करो।

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. 4पी का सिद्धांत किसने प्रतिपादित किया।
2. गुलिक की प्रमुख पुस्तकें कौन–कौन सी हैं।
3. क्रिएटिव एक्सीपिरियंस कब प्रकाशित हुई।
4. वेबर ने सता के कितने प्रकार बताए है।
5. फालेट ने एकीकरण में किन तत्वों को बाधा माना है।